अनुवाद के निकष पर *बुद्धचरित* का अध्ययन

(जे. एन. यू. में एम. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध)

शोध निर्देशक
डॉ. रणजीत कुमार साहा

सह शोध निर्देशक
प्रो. गंगा प्रसाद विमल

शोधार्थी
आनन्द कुमार शुक्ल

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2005

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
NEW DELHI–110067,INDIA

Dated: 28/07/2005

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle : **"ANUVAD KE NIKASH PAR 'BUDDH CHARIT' KA ADHYAYAN"** (STUDY OF 'BUDDH CHARIT' AT THE NORMS OF TRANSLATION) by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other university/institution.

Anand K. Shukla

ANAND KUMAR SHUKLA
(Research Scholar)

Ranjit Kr. Saha

Dr. RANJIT KUMAR SAHA
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. GANGA PRASAD VIMAL
(Joint supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

M. S. Hus

PROF. MOHD. SHAHID HUSAIN
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS/JNU

अपने बब्बा

श्री रामलोचन शुक्ल

की पुनीत स्मृतियों को सादर .....

अनुक्रम

भूमिका **i–iii**

प्रथम अध्याय : अनुवादक रामचंद्र शुक्ल 1–26

(क) आधुनिक काल के आरंभ में हिंदी समाज एवं साहित्य के लिए अनुवाद कर्म की उपयोगिता

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कर्म

(ग) आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा अनूदित सामग्री का युगीन मूल्यांकन

(घ) अनुवाद हेतु *लाइट ऑफ एशिया* के चयन का कारण

द्वितीय अध्याय : काव्यानुवाद की समस्याएँ एवं *बुद्धचरित* 27–63

(क) काव्यानुवाद की समस्याएँ

(ख) सांस्कृतिक अंतर के परिप्रेक्ष्य में *लाइट ऑफ एशिया* और *बुद्धचरित*

(ग) *लाइट ऑफ एशिया* तथा *बुद्धचरित* में वस्तु और शिल्प की समानताएँ एवं अंतर

(घ) *लाइट ऑफ एशिया* में बौद्ध दर्शन एवं *बुद्धचरित* में उसका अनुवाद

(ड.) *लाइट ऑफ एशिया* के हिंदी अनुवादक द्वारा ली गई छूटें

तृतीय अध्याय : *बुद्धचरित* में अनुवाद का स्वरूप और उसकी मीमांसा 64–106

(क) आचार्य शुक्ल की अनुवाद दृष्टि

(ख) *बुद्धचरित* में अभिव्यक्त भाषा : चयन का कारण और उसका स्वरूप

(ग) *बुद्धचरित* में काव्यानुवाद का स्वरूप और उसकी मीमांसा

निष्कर्ष 107–113

ग्रंथ सूची 114–118

भूमिका

मुझे यह ज्ञात नहीं कि भगवान बुद्ध का जीवन और उनके विचार मुझे कब से आकर्षित कर रहे हैं। यह आकर्षण तब और बढ़ा जब स्नातक कक्षा में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में मैंने बौद्ध दर्शन का विधिवत अध्ययन शुरू किया। एम. फिल. में प्रवेश लेने के साथ ही मैंने मन बना लिया था कि अपना लघु शोध मैं बुद्ध के जीवन और उनके विचारों पर आधारित किसी कृति पर ही प्रस्तुत करूँगा। लेकिन कृति के चयन की समस्या बनी रही। समस्या थोड़ी जटिल थी, क्योंकि अब मैं हिंदी अनुवाद का छात्र हो चुका था, साहित्य या दर्शनशास्त्र का नहीं।

समस्या का समाधान जल्दी ही हो गया। मुझे लगा कि सर एडविन अर्नाल्ड की काव्यकृति *लाइट ऑफ एशिया* का आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा *बुद्धचरित* शीर्षक से किया गया काव्यानुवाद अवश्य देख लेना चाहिए। मैं शुक्ल जी के आलोचक व्यक्तित्व का कायल तो था ही, *बुद्धचरित* पढ़ने के पश्चात् मैं उनके अनुवादक व्यक्तित्व से भी अभिभूत हो गया। अब विलंब का कोई कारण नहीं था। मैंने अपने पूर्व शोध निर्देशक प्रो. गंगा प्रसाद विमल को अपने विषय के बारे में बताया और उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

अपने विमर्श को सुचारु रूप देने के लिये मैंने शोध विषय 'अनुवाद के निकष पर *बुद्धचरित* का अध्ययन' को तीन अध्यायों में विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय 'अनुवादक रामचंद्र शुक्ल' है। इस अध्याय में सर्वप्रथम हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के आरंभिक दौर में अनुवादों की उपयोगिता पर बहस की गई है। इसके पश्चात् उस समय के प्रमुख अनुवादक रामचंद्र शुक्ल के अनुवाद कार्यों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही, उनके द्वारा किये गये अनुवादों का युगीन आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन भी किया गया है। अध्याय के अंत में इस प्रश्न पर चर्चा की गई है कि आखिर उन्होंने अनुवाद हेतु *लाइट ऑफ एशिया* का ही चयन क्यों किया, जबकि उनके समक्ष बुद्ध के जीवन और विचारों से संबंधित अन्य सशक्त कृतियाँ विकल्प के रूप में विद्यमान थीं।

द्वितीय अध्याय 'काव्यानुवाद की समस्याएँ एवं *बुद्धचरित* ' में काव्यानुवाद की राह में आनेवाली सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में *बुद्धचरित* का अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में सर्वप्रथम काव्यानुवाद की सैद्धांतिक एवं

व्यावहारिक समस्याओं को उठाया गया है। इसके पश्चात् इस बात पर बहस केंद्रित है कि सांस्कृतिक अंतर के परिप्रेक्ष्य में *बुद्धचरित* किस प्रकार विशिष्ट स्थिति को प्राप्त करती है और इस विशिष्टता के चलते अनूदित कृति होते हुए भी मूल कृति से वह किस प्रकार श्रेष्ठ सिद्ध होती है। वस्तु और शिल्प के स्तर पर *बुद्धचरित* में आचार्य शुक्ल ने मूल कृति से हटते हुए कौन से परिवर्तन किये हैं, इसकी चर्चा करते हुए इस अध्याय में उन परिवर्तनों के कारणों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में इसे भी रेखांकित किया गया है कि *बुद्धचरित* में आचार्य शुक्ल ने अर्नाल्ड द्वारा प्रस्तुत बौद्ध धर्म को कहाँ तक स्वीकार किया है और जो परिवर्तन एवं परिवर्धन किये हैं, उनके कारण क्या हैं। साथ ही, अपने इस प्रयास में वे कितने सफल हैं तथा कितने असफल। अध्याय के अंत में शुक्ल जी द्वारा ली गयी स्वतंत्रताओं को चिह्नित करते हुए उनके औचित्य एवं अनौचित्य पर प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय '*बुद्धचरित* में अनुवाद का स्वरूप और उसकी मीमांसा' है। इस अध्याय में सर्वप्रथम आचार्य शुक्ल की अनुवाद दृष्टि को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् इस प्रश्न को उठाते हुए उसके कारणों की चर्चा की गई है कि आखिर शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* की भाषा के रूप में ब्रजभाषा का ही चयन क्यों किया। साथ ही, *बुद्धचरित* की भाषा के स्वरूप पर भाषाशास्त्रीय एवं काव्यमीमांसीय दृष्टिकोण से विचार किया गया है। अध्याय के अंत में *बुद्धचरित* में काव्यानुवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए एक अनूदित कृति के रूप में उसकी काव्य मीमांसा प्रस्तुत की गई है तथा यह जानने का प्रयास किया गया है कि काव्यात्मकता के संरक्षण एवं काव्यानुवाद के निकष पर *बुद्धचरित* कितनी सफल है और कितनी असफल।

शोध सामग्री के संकलन के लिए मैं दिल्ली, इलाहाबाद और वाराणसी के तमाम पुस्तकालयों में गया, किंतु अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के पुस्तकालय से मुझे कुछ पुरानी और अत्यंत उपयोगी सामग्री एवं जानकारियाँ अवश्य प्राप्त हुईं। अपने विषय से संबंधित जानकारी एवं सूचनाएँ प्राप्त करने हेतु मैं वाराणसी में 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान' की निदेशक तथा आचार्य शुक्ल की पौत्री कुसम चतुर्वेदी और मिर्जापुर में शुक्ल जी के निवास स्थान पर उनके भाई के पौत्र श्री राकेश चंद्र शुक्ल से भी मिलने गया। कुसुम जी से मुझे अपने विषय से संबंधित कोई नयी सामग्री तो नहीं मिल सकी, किंतु *बुद्धचरित* के विषय में अपने विचारों से उन्होंने मुझे अवश्य अवगत कराया जो मेरे लिए उपयोगी

रहे। राकेश जी से मुझे कोई नयी या उपयोगी सूचना नहीं प्राप्त हो सकी। मेरे लिये सबसे बड़े स्रोत और सबसे उपयोगी पुस्तकालय बने मेरे शोध निर्देशक डॉ. रणजीत कुमार साहा। इस लघु शोध में यदि प्रचुर सामग्री का विनियोग हो सका है तो इसमें उनकी बहुत बड़ी भूमिका है।

अंततः मुझे इस कटु सत्य को स्वीकार करना पड़ा कि *बुद्धचरित* अभी तक आलोचकों से लगभग अछूती ही है। लगभग बारह-तेरह पुस्तकों और पत्रिकाओं में इसके विषय में जानकारी दी गई है – केवल जानकारी। एक अध्याय के रूप में इस कृति पर विमर्श मात्र एक पुस्तक *रामचंद्र शुक्ल* (सं. सुरेश चंद्र त्यागी) में प्रस्तुत किया गया है, वह भी बहुत संक्षेप में।

यह लघु शोध कार्य जब मैंने शुरू किया था, तब मेरे शोध निर्देशक प्रो. गंगा प्रसाद विमल थे। उन्होंने विषय की रूपरेखा को मूर्त बनाया। साथ ही, शोध का अभिगम भी स्पष्ट किया। शोध कार्य आरंभ किये जाने के कुछ समय बाद ही वे सेवानिवृत्त हो गये। प्रो. गंगा प्रसाद विमल के बाद मेरे शोध निर्देशक बने डॉ. रणजीत कुमार साहा। वे सदैव बेहतर कार्य के लिये मुझे प्रोत्साहित करते रहे। शोध कार्य के बीच आयी कठिनाइयों के निवारण में उन्होंने जो मार्गनिर्देश दिया, वह अमूल्य है।

इसके अलावा भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू. में शोध वैज्ञानिक डॉ. ओमप्रकाश सिंह के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता।

मेरे माता-पिता का आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा और उनकी आशाएँ मेरे लिये उत्प्रेरक का कार्य करती रहीं। गणित का अध्यापक होने के बावजूद पापा ने बौद्ध दर्शन की निष्पत्तियों को समझने में मदद की। परिवारजनों ने सहायता करने में सदैव तत्परता दिखायी। बच्चों– शिवम्, स्वप्निल, प्रखर, प्रज्ज्वल, आर्तिका, अर्चिता, मुन्नू और हरि जी का सहयोग यह रहा कि जब मैं घर पर शोध सामग्री का अध्ययन एवं विश्लेषण कर रहा होता था, तब वे अधिक परेशान नहीं करते थे।

राज शेखर, सुभाष और अमित जैसे मित्र होना सौभाग्य की बात है। वे पग-पग पर मेरे साथ रहे। अंततः परमपिता को याद करना आवश्यक है जिनका स्नेह संसार का सबसे मूल्यवान उपहार है।

प्रथम अध्याय

अनुवादक रामचंद्र शुक्ल

(क) आधुनिक काल के आरंभ में हिंदी समाज एवं साहित्य
के लिए अनुवाद कर्म की उपयोगिता

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कर्म

(ग) आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा अनूदित सामग्री का युगीन मूल्यांकन

(घ) अनुवाद हेतु *लाइट ऑफ एशिया* के चयन का कारण

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवादक व्यक्तित्व उनके आलोचक व्यक्तित्व के आगे दब सा गया है। अकसर इस बात को नजरअंदाज कर दिया जाता है कि वे अपने युग के एक प्रमुख अनुवादक भी थे, जिन्होंने अनुवाद कर्म के माध्यम से अपने समकालीन हिंदी भाषा एवं साहित्य को चिंतनधारा के नवीन आयामों से जोड़ा। और कई बार अगर उनके अनुवाद कर्म की चर्चा की भी जाती है तो महज यह बताने के लिये कि यह उनका अतिरिक्त कार्य है; एक 'बाई प्रोडक्ट' जिसकी उपयोगिता सूचना होने भर की है।

यह विस्मरण सिर्फ आचार्य शुक्ल के अनुवाद कर्म के लिए हो, ऐसा नहीं है। इसका सामना भारतेंदु युग से लेकर द्विवेदी युग तक के उन तमाम अनुवादकों को करना पड़ा है, जिनके अनुवाद कर्म को मात्र यह कहकर दरकिनार नहीं किया जा सकता कि वे सिर्फ अनुवाद हैं और आधुनिक काल के हिंदी साहित्य के विकास में उनका योगदान इतना ही है कि ये हिंदी में अनूदित कृतियाँ हैं। निश्चित रूप से आज हिंदी साहित्य विविध विधाओं के सुदृढ़ ढाँचे पर खड़ा है। शायद आज हिंदी के साहित्यिक समाज को कोई अनूदित कृति क्रांतिकारी परिवर्तन के लिये उत्साहित न कर सके, लेकिन क्या ऐसा ही आधुनिक काल के उस आरंभिक दौर में भी था जब तमाम मुख्य साहित्यकार भारतेंदु के नेतृत्व में अपनी-अपनी अनूदित कृतियों के माध्यम से हिंदी साहित्य में विविध विधाओं एवं सोचों के लिये जमीन तैयार करने में जुटे थे। इन सबके बीच यह प्रश्न अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि आधुनिक काल के आरंभिक दौर में हिंदी साहित्य के विकास के लिये अनुवाद कर्म जरूरी था या नहीं; और यदि था तो कितना ?

आधुनिक काल के आरंभ में हिंदी समाज एवं साहित्य के लिये अनुवाद कर्म की उपयोगिता

आधुनिक काल में आकर हिंदी भाषी समाज का सामना पहले-पहल जिन अनुवादों से हुआ वे उनके औपनिवेशिक शासकों द्वारा खुद की शासकीय एवं वर्चस्ववादी जरूरतों की पूर्ति के लिये तैयार कराये गये थे। 1757 ई. में प्लासी और 1764 ई. में बक्सर के युद्ध के फलस्वरूप जब बंगाल और बिहार ईस्ट इण्डिया कंपनी के शासन में आये तब शासकों को हिंदुओं के उत्तराधिकार की न्याय-व्यवस्था करने में कठिनाई का अनुभव हुआ। इस कठिनाई से निजात पाने के लिये 1776 ई. में सबसे अधिक

प्रामाणिक समझी जाने वाली *मनुस्मृति* का *ए कोड ऑफ जेन्टू लॉज* नाम से अनुवाद कराया गया। धीरे-धीरे शासकों को समझ में आने लगा कि जिस देश पर वे शासन कर रहे हैं उस पर अपनी शासकीय दावेदारी मजबूत करने के लिये उन्हें जहाँ एक ओर इस देश की संस्कृति और रीति-रिवाजों को व्यापक रूप से समझना होगा, वहीं दूसरी ओर अपनी खुद की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और सबसे अधिक राजनैतिक उपलब्धियों से इस देश की जनता को परिचित कराना होगा, ताकि अपने शासकों के प्रति श्रद्धा, विस्मय एवं भय का वातावरण इस देश की जनता में लगातार व्याप्त रह सके।

प्राचीन नीतियों और रीति-रिवाजों को समझने का यह प्रयास व्यापक रूप से अठारहवीं सदी तक चलता रहा। इन्हीं प्रयासों के अंतर्गत कई संस्थाओं की स्थापना हुई। इन प्रयासों में सर्वाधिक सशक्त प्रयास मैक्समूलर का रहा जिनके संपादकत्व में विपुल संख्या में प्राचीन धर्मग्रंथों का अनुवाद किया गया। ये अनुवाद *सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज* के कुल मिलाकर पचास खंडों में, जिनमें कई खंडों के अनेक भाग भी हैं, प्रकाशित हुए।

निश्चित रूप से इन अनुवादों के माध्यम से पाश्चात्य समाज में पूर्वी और खास तौर पर भारतीय संस्कृति एवं विचारों का प्रसार हुआ, किंतु मामला सिर्फ इतना ही नहीं था। भारत के ब्रितानी शासकों ने इन अनुवादों का इस्तेमाल अपनी स्थिति को सही ठहराने के लिये भी किया। वस्तुतः ब्रितानी शासक पूर्णरूपेण श्रेष्ठता के पूर्वग्रह से भरे हुए थे। वायसराय मेयो ने 1870 ई. में पंजाब के उपराज्यपाल (लेफ्टिनेंट गर्वनर) को लिखे एक पत्र में लिखा– "अपने मातहतों को सिखाइये कि हम सभी संभ्रांत अंग्रेज हैं जो एक हीन जाति पर शासन करने के एक शानदार काम में लगे हुए हैं।"[1] वायसराय मेयो जैसे वरिष्ठ अधिकारी का यह कथन तत्कालीन ब्रितानी शासकों की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है।

दूसरी ओर शासकीय कार्यों से अलग "ब्रितानी लेखकों और कूटनीतिज्ञों ने भी भारतीय समाज एवं संस्कृति की आलोचना भारत पर ब्रितानी राजनैतिक और आर्थिक शासन का औचित्य सिद्ध करने के लिये की।"[2] प्राचीन धार्मिक एवं साहित्यिक ग्रंथों के

---

[1] *स्वतंत्रता संग्राम* – विपन चंद्र/अमलेश त्रिपाठी/बरुण दे, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, सोलहवीं आवृत्ति, 2003, पृ.29

[2] वही, पृ.22

अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से पाश्चात्य विद्वानों ने प्राचीन भारत के समाज एवं संस्कृति के बारे में कई सामान्य निष्कर्ष स्थापित किये। उनके अनुसार प्राचीन भारत के लोगों में तिथि एवं कालक्रम को लेकर कोई निश्चित जागरूकता नहीं थी। उन्होंने यह भी स्थापित किया कि भारत के लोगों को प्राचीन काल से ही स्वेच्छाचारी शासन की आदत है और वे अपनी इहलौकिक समस्याओं से हटकर आध्यात्मिक एवं पारलौकिक समस्याओं में ही डूबे रहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने दृढ़तापूर्वक कहा कि भारतवासियों को न तो कभी राष्ट्रीय भावना का एहसास था, न ही किसी प्रकार के स्वशासन का अनुभव। प्रकारांतर से ब्रिटिश विद्वानों की इन स्थापनाओं का उद्देश्य था– भारत के चरित्र और उपलब्धियों को नीचा दिखाना और विदेशी शासन को न्यायोचित ठहराना।

"ये सारी बातें भारत के विद्वानों के लिये, विशेषकर उनके लिये जो पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए थे, भारी चुनौती बन कर आयीं। वे एक ओर उपनिवेशवादियों द्वारा इतिहास को तोड़-मरोड़कर भारत की छवि के धूमिल किए जाने से चिढ़े हुए थे, तो दूसरी ओर भारत के पतनोन्मुख सामंती समाज और इंग्लैंड के फलते-फूलते पूँजीवादी समाज के बीच घोर वैषम्य देखकर दुखी भी थे। बहुतेरे विद्वान दृढ़ संकल्प के साथ मैदान में उतरे। उनका संकल्प भारतीय समाज को सुधारना ही नहीं था, बल्कि यह भी था कि भारत के प्राचीन इतिहास का पुनर्निर्माण इस प्रकार किया जाए कि उससे समाज को सुधारने में, और इससे भी बढ़कर, स्वराज्य प्राप्त करने में सहारा मिले।"[1] इसके लिए लगातार भारतीय संस्थाओं एवं समाजों की स्थापनाएँ की गयीं। ये संस्थाएँ एक ओर तो प्राचीन धर्म की श्रेष्ठता की व्याख्या करती थीं तो दूसरी ओर अपने धार्मिक एवं सामाजिक सुधार कार्यक्रमों के माध्यम से प्राचीन विश्वासों एवं परंपराओं को चुनौती भी देती थीं। वस्तुतः यह दौर भारतीय जन-मानस के भीतर भीषण द्वंद्व का दौर था।

भारत पर अंग्रेजी राज का प्रभाव इस पर पड़े अन्य प्रभावों से प्रकृततः भिन्न था। उनसे पूर्व भी कई विदेशियों ने भारत पर शासन किया था, किंतु भारतीय जनता ने कभी अपना आत्मसंबल नहीं खोया। उसे हमेशा यह विश्वास रहा कि उसकी संस्कृति विदेशी शासकों की मातृ संस्कृति से उत्तम है। उसका यह विश्वास अनायास नहीं था। प्रायः विदेशी शासकों ने यहाँ आकर इस देश की संस्कृति तथा सभ्यता को

---

[1] *प्राचीन भारत* – रामशरण शर्मा, एन. सी. ई. आर. टी. , प्रथम संस्करण, 1990, पृ.7

अपना लिया, तथा भारतीय संस्कृति एवं समाज का अभिन्न अंग बनकर उसी में समा गये।

"परंतु अंग्रेजी आक्रांता तो पूर्णरूप से भिन्न थे। 18वीं शताब्दी में यूरोप में एक नवीन बौद्धिक लहर चल रही थी, जिसके फलस्वरूप एक 'जाग्रति के युग' का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषण की भावना ने यूरोपीय समाज को एक प्रगति प्रदान की। विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने राजनीतिक, सैनिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी पक्षों को प्रभावित किया और अब यूरोप सभ्यता का अग्रणी महाद्वीप था। उसके विपरीत भारत एक निश्चल, निष्प्राण तथा गिरते हुए समाज का चित्र प्रस्तुत करता था।"[1]

अंग्रेज शासकों के आने से भारत में तेजी से शहरीकरण एवं आधुनिकीकरण का दौर चला। मशीनों के आगमन ने जनजीवन को नया रूप देने की पहल की। इस नये दौर में भी भारतीय मानस ने अपनी आत्मचेतना को बचाने का लगातार प्रयास किया। भारतीय विद्वानों ने नये विचारों का स्वागत तो किया, किंतु उसी हद तक, जहाँ तक उनकी संस्कृति की आत्मा अक्षुण्ण रह सके। इस प्रकार भारतीय जनता अपने सांस्कृतिक स्वरूप को और भी गहराई से जानने और समझने के लिए उत्सुक हो उठी। "इन नवीन विचारों के विक्षोभ ने भारतीय संस्कृति में एक प्रसार की भावना उत्पन्न की। संस्कृत के अध्ययन तथा मुद्रणालयों (Printing Press) के विस्तार के कारण लोगों ने वे पुस्तकें भी पढ़नी आरंभ कर दीं जो पहले उनके पूर्वजों ने कभी नहीं पढ़ी थीं। इस ज्ञान के विस्तार के कारण भारत में पुनर्जागरण (Renaissance) की भावना आयी। भारतीय बुद्धिजीवियों ने देश के भूतकाल को परखने का प्रयास किया और यह देखा कि हिंदू धर्म के बहुत से विश्वास तथा रीति-रिवाज न केवल गलत हैं, अपितु उन्हें मानना संभव भी नहीं है और उन्हें त्यागना ही ठीक है। इसी प्रकार उन्होंने यह भी देखा कि भारत के सांस्कृतिक रिक्थ (Heritage) में कुछ पक्ष ऐसे भी हैं जिनका भारतीय पुनर्जागरण में बहुत महत्त्वपूर्ण तात्त्विक मर्म है। इन सभी के फलस्वरूप भारतीय समाज में कुछ धार्मिक व सामाजिक सुधार आंदोलन प्रारंभ हुए जिन्होंने भारतीय समाज का न केवल रूप ही बदल दिया अपितु भारत के आधुनिकीकरण में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया।"[2]

---

[1] *आधुनिक भारत का इतिहास* – बी. एल. ग्रोवर / यशपाल, एस. चंद एण्ड कंपनी लि., नई दिल्ली, पंद्रहवाँ संस्करण, 2000, पृ.270

[2] वही, पृ.271

वह दौर हिंदी साहित्य के लिए संक्रमण का दौर था। एक ओर रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ह्रास हो रहा था तो दूसरी ओर नवीन विचारों के माध्यम से हिंदी साहित्य में आधुनिक युग का सूत्रपात भी हो रहा था। यह बदलाव नवीन विचारों के आने से हो रहा था और ये विचार विभिन्न भाषाओं, विशेषकर अंग्रेजी कृतियों के अनुवादों के माध्यम से हिंदी साहित्य में प्रवेश पा रहे थे।

वस्तुतः हिंदी साहित्य का आधुनिक काल खड़ी बोली हिंदी के साहित्य के व्यापक रूप से उद्‌भव का काल है। हिंदी साहित्य में खड़ी बोली को केंद्रीय भूमिका में लाने के लिए अनुवाद के महत्त्व को कुछ तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है।[1]

खड़ी बोली हिंदी गद्य की प्राचीनतम पुस्तक मानी जानेवाली राम प्रसाद 'निरंजनी' की *भाषा योग वाशिष्ठ* (1741) वशिष्ठ कृत संस्कृत वेदांत ग्रंथ *योग वाशिष्ठ* का अनुवाद है। खड़ी बोली हिंदी में गद्य की अखंड परंपरा की शुरुआत का श्रेय जिन चार कृतियों को दिया जाता है उनमें विवादास्पद कृति 'उदयमान-चरित या रानी केतकी की कहानी' (1801) को छोड़ दें, जिसे कुछ आलोचक उर्दू गद्य परंपरा की कृति मानते हैं, तो अन्य तीनों रचनाएँ, क्रमशः *सुखसागर, प्रेमसागर* और *नासिकेतोपाख्यान* अनूदित कृतियाँ हैं। इसी प्रकार आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा के प्रवर्तन का श्रेय पानेवाला भारतेंदु हरिश्चंद्र का *विद्यासुंदर* नाटक (1868) यतींद्र मोहन ठाकुर के बांग्ला नाटक *विद्यासुंदर* का छायानुवाद है। खड़ी बोली काव्य की प्रथम कृति कही जानेवाली श्रीधर पाठक की *एकांतवासी योगी* (1886) कविता ऑलिवर गोल्डस्मिथ की *द हरमिट* का काव्यानुवाद है। आचार्य शुक्ल ने किशोरीलाल गोस्वामी की जिस कहानी 'इंदुमती' को हिंदी की पहली आधुनिक कहानी माना है, वह शेक्सपीयर की *द टेम्पेस्ट* की छाया लेकर लिखी गयी है। खड़ी बोली हिंदी में निबंध-विधा के स्वरूप को स्थापित करने वाले दोनों ग्रंथ क्रमशः *निबंधमालादर्श* (1899) और *बेकन -विचार -रत्नावली* (1900) अनूदित ग्रंथ हैं। और तो और, सबसे रोचक तथ्य यह है कि हिंदी आलोचना की पहली पुस्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत *हिंदी कालिदास की आलोचना* अनुवाद की समालोचना से संबंधित पुस्तक है।

---

[1] ये तथ्य आचार्य शुक्ल के *हिंदी साहित्य का इतिहास* एवं डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा की पुस्तक *अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन* से ग्रहण किये गये हैं।

ये सारे तथ्य संयोग भर नहीं हैं। ये सारे तथ्य यह दर्शाते हैं कि बगैर इन अनुवादों के खड़ी बोली हिंदी साहित्य का स्वरूप ठीक वैसा ही न होता, जैसा आज है।

लेकिन खड़ी बोली हिंदी के साहित्य का उत्कर्ष अनायास घटना नहीं थी। भारत के औपनिवेशिक शासकों में भारत में अपने विचारों के प्रसार के लिए अंग्रेजी बनाम भारतीय भाषाओं का द्वंद्व चल रहा था। एक ओर उन्होंने अपने ब्रितानी कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान देने के लिए कलकत्ता में 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की तो दूसरी ओर उन्होंने शासकीय कार्यों में लिपिकीय सहायता के लिये जिन भारतीय नौजवानों को चुना, उनके लिए अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया। इस तरह भारत में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की अच्छी जमात तैयार हो गयी। अंग्रेजी एक तरह से अभिजात्य वर्ग का सांस्कृतिक प्रतीक बन गयी और उसने अपने आप में एक नई वर्चस्ववादी संस्कृति को जन्म दिया। अंग्रेज शासकों की अनुशंसा भारत में एक ऐसा वर्ग तैयार करने की हो गयी, जिसकी केवल चमड़ी ही भारतीय रहे और बाकी सब कुछ अंग्रेज।

हिंदी भाषी क्षेत्रों में ब्रितानी शासकों और ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने कार्यों और विचारों के प्रसार के लिये जिस भाषा को चुना वह थी– खड़ी बोली हिंदी। इसके पीछे यह तर्क था कि हिंदी क्षेत्र कहे जानेवाले क्षेत्र में खड़ी बोली को ही यह श्रेय था या दिया गया कि इसे ही इस क्षेत्र का प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा-बहुत समझ सकता है। दूसरी ओर हिंदी के साहित्यकारों ने भी साहित्य में खड़ी बोली की ससम्मान उपस्थिति के लिए प्रयत्न किया। भारतेंदु ने खड़ी बोली का गद्य और पद्य दोनों विधाओं में स्वागत किया। उन्होंने माना कि एक तो ब्रजभाषा में गद्य की कोई परंपरा नहीं रही है और दूसरे ब्रजभाषा का पद्य साहित्य साहित्यिक रूढ़ियों में फँस कर रह गया है। इस प्रकार खड़ी बोली हिंदी का मार्ग क्रमशः प्रशस्त होता गया।

"संवत् 1860 के लगभग हिंदी गद्य की जो प्रतिष्ठा हुई उसका उस समय यदि किसी ने लाभ उठाया तो ईसाई धर्म प्रचारकों ने, जिन्हें अपने मत को साधारण जनता के बीच फैलाना था। ...विलियम केरे (William Carey) तथा और कई अँगरेज पादरियों के उद्योग से इंजील का अनुवाद उत्तर भारत की कई भाषाओं में हुआ। ...जिस भाषा में साधारण हिंदू जनता अपने कथा-पुराण कहती सुनती आती थी उसी भाषा का अवलंबन

ईसाई उपदेशकों को अवश्य दिखाई पड़ा।"[1] इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म के प्रसार हेतु हिंदू धर्म की जमकर आलोचना शुरू की। उन्होंने मिथकों, पूजा-विधानों और विश्वासों की खिल्ली उड़ाई। इसका प्रभाव भारत के पढ़े-लिखे तबके पर व्यापक रूप से पड़ा। इन शिक्षित लोगों ने ईसाई धर्म की भी उन्हीं तर्कों के आधार पर आलोचना शुरू कर दी जिनके आधार पर ईसाई धर्मोपदेशक हिंदू धर्म की आलोचना किया करते थे। इस प्रकार भारतीय जनमानस में कई प्रभावों के कारण आधुनिक, तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि का प्रसार हुआ।

हिंदी साहित्य ने आधुनिक काल में आकर सर्वप्रथम इसी चेतना को आत्मसात् किया। भारतेंदु हिंदी साहित्य में आधुनिक चेतना के नेता बने। उन्होंने अपने समय और समाज को नई दृष्टि से देखते हुए एक नये साहित्यिक परिदृश्य का निर्माण किया। इसके लिए दो बातें जरूरी थीं, पहली– अपनी संस्कृति के विकास के विविध चरणों को जानना और दूसरी– नये एवं अनुकूल विचारों का स्वागत करना। यही वजह है कि भारतेंदु के साहित्य में एक ओर अपनी संस्कृति के प्रति गहरी आस्था है तो दूसरी ओर समाज के प्रति वैज्ञानिक और व्यावहारिक आग्रह भी, जिसे कुछ आलोचक देशभक्ति बनाम राजभक्ति का द्वंद्व कहते हैं।

उस समय के हिंदी भाषी समाज के शिक्षित वर्ग के पास प्राचीन समाज एवं संस्कृति के क्षेत्र में हो रहे नवीनतम शोधों को जानने का माध्यम या तो अंग्रेजी थी या फिर बांग्ला, जो स्वयं भी अंग्रेजी पर इसी प्रकार आश्रित थी। भारतेंदु ने इन विचारों को हिंदी में लाने के लिए स्वयं तो अनुवाद का सहारा लिया ही, अपने मण्डल के अन्य साहित्यकारों को भी इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। इन अनुवादों के माध्यम से विविध महत्त्वपूर्ण विचारों एवं विधाओं का हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में समावेश हो सका।

उस समय का हिंदी साहित्य रूढ़ परंपराओं को ही ढो रहा था। इस तरह समूचा साहित्य जनता से दूर हो गया था। भारतेंदु ने साहित्य को नये विचारों से तो

---

[1] *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, 36वाँ संस्करण, सवंत् 2056 वि., पृ.252

जोड़ा ही, "इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और उसे वे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये।"[1]

दुनिया की तमाम भाषाओं के साहित्य का आरंभ पद्य से हुआ, जबकि हिंदी के आधुनिक काल का आरंभ नाटकों से। यह रोचक तथ्य भारतेंदु की लोकधर्मी चेतना का सबसे बड़ा सबूत है। अन्य सारी साहित्यिक विधाएँ कई मायनों में व्यक्तिगत हुआ करती हैं और इनका पाठक अकेले रसास्वादन कर सकता है, जबकि नाटक अपनी मूल प्रकृति में ही सामूहिक और सामाजिक होता है। शायद यही वजह रही कि संस्कृत काव्यशास्त्र में दर्शक को 'सामाजिक' कहा गया। और आचार्य शुक्ल को भले ही यह बात विलक्षण लगी हो कि हिंदी के आधुनिक काल का आरंभ नाटकों से हुआ, लेकिन विलक्षण बात यह भी है कि हिंदी का पहला नाटक अनूदित कृति है। इस प्रकार हिंदी साहित्य में आधुनिकता के आगमन और अनुवाद के बीच बुनियादी संबंध सिद्ध होता है।

इन आरंभिक अनूदित कृतियों ने हिंदी साहित्य को विधागत विविधता तो प्रदान की ही, हिंदी की शब्द संपदा एवं अभिव्यंजना शक्ति का भी विकास किया। "अंगरेजी आदि अन्य समुन्नत भाषाओं की उच्च विचारधारा से परिचित और अपनी भाषा पर भी यथेष्ट अधिकार रखनेवाले कुछ लेखकों की कृपा से हिंदी की अर्थोद्घाटिनी शक्ति की अच्छी वृद्धि और अभिव्यंजन प्रणाली का भी अच्छा प्रसार हुआ।"[2] अपने आरंभिक दौर में किसी भी भाषा के साहित्यिक परिदृश्य में ऐसी घटनाएँ स्वाभाविक हैं। "एक युवा साहित्यिक प्रणाली चूँकि सभी प्रकार की रचनाओं का तत्काल उत्पादन कर पाने में असमर्थ होती है, वह दूसरे साहित्य के अनुभवों के अनुवाद का फायदा उठाना चाहती है। *रत्नावली* की भूमिका में भारतेंदु लिखते हैं : 'हिंदी भाषा में जो सब भाँति की पुस्तकें बनने के योग्य है अभी वे बहुत कम बनी हैं विशेषकर के नाटक तो (कुँवर लक्ष्मण सिंह के शकुंतला के सिवाय) कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिनको पढ़ के कुछ चित्त को आनंद और इस भाषा का बल प्रकट हो; इस वास्ते मेरी इच्छा है कि चार नाटकों का तर्जुमा हिंदी में हो जाए तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।"[3] भारतेंदु ने साहित्य के रिक्त को भरने में अनुवाद की उपयोगिता को समझते हुए न केवल खुद अनुवाद किये,

---

1 वही, पृ.246

2 वही, पृ.268

3 *अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन* – डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2002, पृ.42

बल्कि अपने सहयोगियों को भी इस कार्य में आगे आने के लिये तमाम फायदे बताते हुए प्रोत्साहित किया।

खड़ी बोली के साहित्य को पुष्ट करने के लिये उस समय चार भाषाओं क्रमशः अंग्रेजी, संस्कृत, बांग्ला और मराठी का विशेष अनुसरण किया गया। नवजागरण काल की इस जरूरत को समझते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सलाह दी– "जैसे अंग्रेजों ने ग्रीक और लैटिन भाषा की सहायता से अंग्रेजी की उन्नति को और इन भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रंथों का अनुवाद करके अपने साहित्य की शोभा बढ़ाई, वैसे ही हमको भी करना चाहिए। इस समय अंग्रेजों का साहित्य अत्यंत उन्नत दशा को प्राप्त है। अतएव हमको चाहिए कि उस भाषा के अच्छे-अच्छे ग्रंथों का अनुवाद करके हिंदी की दशा सुधारें।"[1] ये बात द्विवेदी जी के हृदय में इस कदर बैठी कि वे इसे ही विषय वस्तु बनाकर एक कविता भी लिख बैठे–

"इंग्लिश का ग्रंथ समूह बहुत भारी है
अति विस्तृत जलधि समान धारी है
संस्कृत भी इसके लिए सख्यकारी है
उसका भी ज्ञानागार हृदयग्राही है
इन दोनों में से अर्थ रत्न को लीजै
हिंदी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै।"[2]

वस्तुतः महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य को ज्ञान राशि का संचित कोश मानते थे। शायद यही वजह रही कि उन्होंने यह निर्णय ही सुना दिया कि– "एक अच्छी पुस्तक का अनुवाद पचास नई पर निःसार पुस्तकों की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखता है।"[3]

---

[1] *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण* – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997, पृ.322 पर उद्धृत

[2] *काव्यानुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ* – नगीन चंद सहगल, हिंदी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1991, पृ.8 से उद्धृत

[3] वही, पृ.9

सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार "सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी के बाद आधुनिक बांग्ला साहित्य का सर्वाधिक प्रेरक प्रभाव रहा है।"[1] यह बात खड़ी बोली के आरंभिक निर्माण में आसानी से देखी जा सकती है और छायावाद युग में आकर जब निराला 'राम की शक्ति-पूजा' लिख रहे थे तब भी उनके लिए कृत्तिवासी बांग्ला रामायण ही प्रेरणा स्रोत बनी। खड़ी बोली के प्रथम नायक भारतेंदु ने सम्मति दी– "यद्यपि हिंदी भाषा में दस बीस नाटक बन गए हैं, किंतु हम यही कहेंगे कि अभी इस भाषा में नाटकों का बहुत ही अभाव है। आशा है कि काल की क्रमोन्नति के साथ ग्रंथ भी बनते जाएँगे। और अपनी सम्मति शालिनी ज्ञानवृद्धा बड़ी बहन बंगभाषा के अक्षयरत्न भंडागार की सहायता से हिंदी भाषा बड़ी उन्नति करै।"[2]

इस प्रकार खड़ी बोली हिंदी साहित्य ने अपने दोनों आरंभिक चरणों क्रमशः भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग में तो अपने आप को अनूदित कृतियों के माध्यम से परिवर्धित एवं विकसित किया ही, परवर्ती समय में भी दूसरी भाषाओं की रचनाएँ हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों को प्रभावित करती रहीं।

हिंदी साहित्य आधुनिक काल के आरंभ में संक्रांति के दौर से गुजर रहा था। उसमें एक ओर विधागत कमियाँ थीं, यानी उसमें कई विधाओं का प्रवेश होना बाकी था तो दूसरी ओर हिंदी साहित्य वैचारिक तौर पर भी रूढ़ एवं बद्ध परंपराओं का वाहक बना हुआ था। इस जड़ता से छुटकारा पाने के लिये भारतेंदु की अगुवाई में साहित्यिक आयात का आरंभ हुआ। यह आयात मनमानी तरीके से नहीं हुआ, बल्कि इसे एक सोची-समझी सामूहिक कोशिश के रूप में देखा और परखा जा सकता है। जिन-जिन क्षेत्रों में उस समय कमियाँ महसूस की गईं उनके आयात पर अधिक जोर दिया गया। यथा– उपन्यास की जब हिंदी साहित्य में आवश्यकता महसूस की गई तब अंग्रेजी और बांग्ला से कई उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया गया। "इन अनुवादों से बड़ा भारी काम यह हुआ कि नये ढंग के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के ढंग का अच्छा परिचय हो गया और स्वतंत्र उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति और योग्यता उत्पन्न हो गई।"[3] रोचक तथ्य यह रहा कि उपन्यास जिसे पूँजीवादी समाज की उपज कहा जाता है, हिंदी साहित्य में आयातित होने पर अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रकृत्या

---

[1] *अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन* – डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा, पृ.44
[2] वही, पृ.45
[3] *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.249

भिन्न होकर औपनिवेशिक मानसिकता के विरुद्ध संघर्ष का महाकाव्य बन गया। इस बात में अनुवाद की शक्ति और अनुवादक की प्रवृत्ति एवं योग्यता दोनों का दिग्दर्शन होता है।

एक बार किसी विधा का परिचय प्राप्त हो जाने के पश्चात् हिंदी साहित्य की परंपरा में भी उस विधा की आवश्यकता महसूस की गई। धीरे-धीरे नवीन विधाओं एवं विचारों ने हिंदी साहित्य में अपने पाँव जमा लिये। इस प्रकार अनुवाद न केवल रक्षात्मक औजार के रूप में सामने आया, बल्कि उसने अपने समय, समाज एवं साहित्य को संशोधित, परिवर्धित एवं विकसित करने के लिये एक सुगठित आधार भूमि भी प्रदान की।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कर्म

प्रथम अध्याय के इस खण्ड के लेखन कार्य को लेकर मैं सर्वाधिक आश्वस्त था कि आचार्य शुक्ल जैसे हिंदी साहित्य के पुरोधा के द्वारा अनूदित पुस्तकों एवं लेखों की सूचनाएँ मुझे आसानी से प्राप्त हो सकेंगी। लेकिन जब इस खण्ड पर मैंने कार्य करना शुरू किया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। शुक्ल जी से संबंधित अधिकांश पुस्तकों में या तो उनके द्वारा किये गये कुछ मुख्य अनुवादों की औपचारिक चर्चा कर दी गई है, या फिर सूचना पर आधृत सतही विश्लेषण। जिन पुस्तकों में उनके अनुवाद कार्यों की सूची दी भी की गई है तो वह इतनी भ्रामक, अधूरी या प्रमादपूर्ण है कि उनका उपयोग शोध कार्य में करना बहुत बड़ा खतरा मोल लेना है। और तो और, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के एक शोधार्थी ने तो एक ऐसे उपन्यास का अनुवाद आचार्य शुक्ल से करा डाला है जो उन्होंने किया ही नहीं।[1]

किताबों की दुनिया से थक-ऊब कर मैंने आचार्य शुक्ल के निकट-संबंधियों और उनके नाम से संस्थान चला रहे व्यक्तियों से मिलने का निश्चय किया। इस क्रम में सबसे पहले मैं नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी गया। वहाँ के पुस्तकालय की ग्रंथ-सूची और विक्रय विभाग की सूचनाओं से भी मुझे कोई अपेक्षित सहायता नहीं मिल सकी, हाँ कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुरानी समीक्षाएँ एवं जानकारियाँ मुझे अवश्य मिलीं, जिनका इस शोध में यथास्थान उपयोग किया गया है।

---

[1] *आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कर्म* – (शोधार्थी) संजय कुमार तिवारी, भारतीय भाषा केंद्र, ज.ने.वि. (1997 में प्रस्तुत)

सभा के पुस्तकालय से कार्य समाप्त कर मैं आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, वाराणसी की सर्वेसर्वा और शुक्ल जी के कनिष्ठ पुत्र श्री गोकुलचंद्र शुक्ल की पुत्री श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी से मिलने गया। उन्होंने अभी हाल ही में डॉ. ओमप्रकाश सिंह के साथ मिलकर *चिंतामणि–4* का संपादन किया है।[1] कुसुम जी ने आचार्य शुक्ल के जीवन से संबंधित कई बातें मुझे बतायीं, लेकिन आचार्य शुक्ल के अनुवाद कार्यों की ठीक सूची उनके पास भी नहीं थी। अंततः मैंने आचार्य शुक्ल के घर रमई पट्टी, मिर्जापुर जाने का निश्चय किया जहाँ आचार्य शुक्ल के भाई श्री कृष्णचंद्र शुक्ल के पौत्र श्री राकेश चंद्र शुक्ल 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल शिक्षण संस्थान' चला रहे हैं। राकेश जी मुझे आचार्य शुक्ल के जीवन से संबंधित सुनी-सुनाई घटनाएँ सुनाते रहे, लेकिन जब-जब मैं उनसे आचार्य शुक्ल के अनुवाद कार्यों की सूची माँगता, वे मौन हो जाते। खैर, राकेश जी से मुझे मिर्जापुर में आचार्य शुक्ल की प्रतिमा के अनावरण के उपलक्ष्य में प्रकाशित एक 'पैम्फलेट' और शुक्ल जी के खपड़ैल वाले घर के ऊपर बन गई रंग-बिरंगी 'बिल्डिंग' का छायाचित्र प्राप्त हुआ। 'पैम्फलेट' में जो कुछ बातें या सूचनाएँ हैं, वे सामान्य रूप से प्रसिद्ध हैं।

ऐसी विडंबनापूर्ण समस्याओं के कारण मुझे आचार्य शुक्ल के अनुवाद कार्यों की ठीक सूची बनाने के लिए अन्वय-व्यतिरेक विधि का उपयोग करना पड़ा है। इसके बावजूद सूचना सही होगी, इसका तो निश्चय है किंतु पूर्ण होगी या नहीं, इसमें संदेह है।

डॉ. मधुरेश ने अपने लेख 'अंग्रेजी काव्य के हिंदी अनुवादक' में आचार्य शुक्ल के बारे में जानकारी दी है कि "उन्होंने आठ पुस्तकों और कुछ निबंधों के अनुवाद किये।"[2] इस लेख में उन्होंने केवल *बुद्धचरित* की चर्चा की है, अन्य अनूदित पुस्तकों एवं लेखों का कोई नामोल्लेख नहीं किया है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में श्री संजय कुमार तिवारी द्वारा किये गये लघु शोध कार्य– 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कर्म'[3] में भी आचार्य शुक्ल द्वारा आठ कृतियों का अनुवाद किया जाना बताया गया है। इस लघु शोध प्रबंध में जिन

---

[1] *चिंतामणि–4* (सं.) श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी, ओमप्रकाश सिंह ; आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, वाराणसी; प्रथम संस्करण, 2002

[2] *अनुवाद* पत्रिका, जुलाई–दिसंबर, 1998, प्रतिष्ठित अनुवादक विशेषांक एवं डॉ. गार्गी गुप्त – स्मृति अंक, पृ.38

[3] यह लघु शोध प्रबंध जे.एन.यू. के भारतीय भाषा विज्ञान केंद्र के लिए 1997 में प्रस्तुत किया गया।

आठ पुस्तकों की चर्चा है, उनमें से दो पुस्तकें संदेह के घेरे में हैं। संजय जी की मानें तो शुक्ल जी ने 1922 ई. में राखालदास बंद्योपाध्याय के उपन्यास *शशांक* का अनुवाद करने के पश्चात् 1922 ई. में उन्हीं के अन्य उपन्यास *करुणा* का भी अनुवाद किया। इसका प्रकाशन नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा किया गया। लेकिन रामचंद्र तिवारी ने *रामचंद्र शुक्ल (संचयिता)* की भूमिका में *शशांक* की चर्चा करने के पश्चात् लिखा है– "बँगला भाषा से किया गया आचार्य शुक्ल का यह अकेला अनुवाद है।"[1] नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के पुस्तकालय से प्राप्त सूचना के अनुसार रामचंद्र तिवारी द्वारा दी गई सूचना सही है। राखाल बाबू के उपन्यास *करुणा* का अनुवाद नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा 1921 ई. में प्रकाशित किया गया था। इस अनूदित उपन्यास की भूमिका चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने लिखी है, किंतु इसके अनुवादक रामचंद्र वर्मा हैं, शुक्ल जी नहीं। साथ ही, सभा द्वारा *करुणा* उपन्यास का एक ही अनुवाद प्रकाशित किया गया है। अतः संजय कुमार तिवारी द्वारा प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में दी गई यह जानकारी गलत है।

इस लघु शोध प्रबंध की दूसरी संदेहास्पद पुस्तक एनी बेसेंट के कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिये गये भाषणों के संग्रह *इण्डियन आइडियल्स इन एजूकेशन, रिलिजन एण्ड फिलॉसफी एण्ड आर्ट* का हिंदी अनुवाद 'भारतीय आदर्श' है। संजय कुमार तिवारी के अनुसार शुक्ल जी द्वारा किये गये इस अनुवाद का प्रकाशन उनके मरणोपरांत 1954 ई. में किया गया। मूल पुस्तक पहले-पहल 1925 ई. में सीनेट हाउस, कलकत्ता द्वारा तथा बाद में थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, मद्रास द्वारा 1930 ई. में प्रकाशित की गई।

रामचंद्र तिवारी ने *रामचंद्र शुक्ल (संचयिता)* की भूमिका में शुक्ल जी के द्वारा अनूदित अंतिम पुस्तक के रूप में *शशांक* की ही चर्चा की है– "वस्तुतः 1922 के बाद आचार्य शुक्ल ने फिर किसी दूसरी भाषा से भी कोई अनुवाद नहीं किया। उसके बाद का उनका सारा साहित्यिक जीवन अर्जित ज्ञान के बल पर मौलिक काव्य-चिंतन, व्यवस्थित इतिहास लेखन और गंभीर आलोचना कार्य में व्यतीत हुआ।"[2] थियोसोफिकल सोसायटी, इलाहाबाद से जानकारी लेने पर भी कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिली। सोसायटी से संबंधित कुछ लोगों के अनुसार ऐसा कोई अनुवाद है, जबकि कुछ के

---

[1] *रामचंद्र शुक्ल (संचयिता)* – (सं.) रामचंद्र तिवारी, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003, पृ52

[2] वही, पृ.52

पास कोई सूचना नहीं थी। कुसुम चतुर्वेदी से इस संबंध में चर्चा करने पर उन्होंने कहा कि यह अनुवाद शुक्ल जी का हो सकता है, किंतु उन्हें आज तक यह पुस्तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। फिलहाल इस अनुवाद के बारे में भ्रम बना हुआ है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की *सम्मेलन पत्रिका* के भाग–70, सं. 2–4 में श्री उदयभान दूबे द्वारा संकलित 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल की रचना-सूची (काल-क्रमानुसार)'[1] प्रकाशित की गई है। इस सूची में आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित सात पुस्तकों के बारे में बताया गया है। इस सूची में भी गंभीर त्रुटियाँ हैं। अनूदित पुस्तकों के रूप में जिस दूसरी पुस्तक– 'प्राचीन भारत का एक शक राजा' की चर्चा की गई है, वह न तो पुस्तक है और न ही अनुवाद। आचार्य शुक्ल का यह मौलिक लेख प्रसिद्ध शक शासक कनिष्क के बारे में उस समय प्राप्त ताजा-तरीन जानकारियों को लेकर है। शुक्ल जी के इस इतिहास संबंधी लेख का प्रकाशन *नागरीप्रचारिणी पत्रिका* के 15 अगस्त 1910 ई. के अंक में हुआ था। श्री दूबे के द्वारा तैयार की गयी सूची में एक और महत्त्वपूर्ण गलती है। इस सूची के अनूदित-असंकलित लेख खंड के पहले लेख का शीर्षक 'भारत में हूण' दिया गया है, जबकि इस लेख का वास्तविक शीर्षक 'भारत के इतिहास में हूण' है। यह लेख *नागरीप्रचारिणी पत्रिका* के अगस्त, 1919 ई. के अंक में प्रकाशित हुआ था। इस लेख को *चिंतामणि–4* में भी संकलित किया गया है।[2]

आचार्य शुक्ल पर अपनी पुस्तक *हिंदी आलोचना के एवरेस्ट* में रामकृपाल पाण्डेय ने आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित साहित्य की सूची दी है।[3] इस सूची में कुल नौ कृतियों का उल्लेख है। सूची की क्रम संख्या चार और पाँच में क्रमशः *विश्व प्रपंच* भाग–1 और *विश्व प्रपंच* भाग–2 का उल्लेख है। इनमें से *विश्व प्रपंच* भाग–1 को आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित कृति नहीं कहा जाना चाहिए। वस्तुतः 1920 में नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की मनोरंजन पुस्तक माला, संख्या 33–34 के तहत *विश्व प्रपंच* के भाग एक और दो का प्रकाशन हुआ।[4] भाग एक में आचार्य शुक्ल द्वारा लिखी गई 155 पृष्ठों की भूमिका है और 152 पृष्ठों के द्वितीय भाग में अर्नस्ट हैकल की कृति *द रिडल ऑफ द यूनीवर्स* के मैसकैब द्वारा मूल जर्मन से अंग्रेजी में किये गये

---

[1] *सम्मेलन पत्रिका*, भाग–70, 2–4, चैत्र–मार्गशीर्ष : शक 1906, पृ.490–496

[2] *चिंतामणि–4*; (सं.) कुसुम चतुर्वेदी, ओमप्रकाश सिंह, पृ54–68

[3] *हिंदी आलोचना का एवरेस्ट* – रामकृपाल पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, पृ.384

[4] स्रोत – नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी का पुस्तकालय

अनुवाद का अनुवाद है। यदि *विश्व प्रपंच* भाग–1 को एक स्वतंत्र पुस्तक मान लें तो यह एक मौलिक कृति ठहरती है, जिसमें आचार्य शुक्ल ने हैकल के विचारों की आलोचना करते हुए अपने स्वतंत्र विचार रखे हैं।

पाण्डेय जी द्वारा प्रस्तुत सूची की क्रम संख्या आठ और नौ में क्रमशः 'कल्पना का आनंद' और 'प्राचीन फारस का इतिहास' उल्लिखित हैं। दोनों अनूदित लेख हैं, पुस्तकें नहीं।

रामचंद्र तिवारी ने *रामचंद्र शुक्ल संचयिता* में आचार्य शुक्ल की रचनाओं की सूची संकलित की है।[1] इस सूची में कुल आठ अनूदित कृतियों का उल्लेख किया गया है। यह सूची यद्यपि अपूर्ण है, तथापि त्रुटिहीन है। इस सूची में उल्लिखित 'कल्पना का आनंद' और 'साहित्य' अनूदित लेख हैं, जबकि छः अन्य कृतियाँ– *मेगास्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन, राज्य प्रबंध शिक्षा, आदर्श जीवन, विश्व प्रपंच, शशांक* और *बुद्धचरित* हैं। ये सभी छः कृतियाँ अनूदित पुस्तकें हैं और फिलहाल प्राप्य एवं प्रामाणिक हैं।

संभवतः *विश्व प्रपंच* भाग–1 और एनी बेसेंट के कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिये गये भाषणों के संग्रह *इण्डियन आइडियल्स इन एजूकेशन, रीलिजन एण्ड फिलॉसफी एण्ड आर्ट* के शुक्ल जी द्वारा किये गये अनुवाद 'भारतीय आदर्श' को जोड़कर कुछ लोगों ने आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित पुस्तकों की संख्या आठ बतायी है। *विश्व प्रपंच* भाग–1 जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यदि स्वतंत्र पुस्तक मानी जाती है तो भी मौलिक रचना ही ठहरेगी, अनूदित नहीं। 'भारतीय आदर्श' के बारे में कोई निश्चित सूचना नहीं मिल सकी है। अतः इस पुस्तक के बारे में यहाँ कुछ भी कहना अनावश्यक होगा। सम्प्रति आचार्य शुक्ल के अनुवाद कर्म का वर्णन उपर्युक्त छः प्राप्य पुस्तकों एवं कुछ लेखों के आधार पर करना ही सार्थक होगा।

एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित आचार्य शुक्ल का प्रथम अनुवाद कार्य *मेगास्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन* है। मेगास्थनीज की मूल पुस्तक *इण्डिका* अप्राप्य है। इस पुस्तक का पता परवर्ती ग्रंथों में ग्रहण किये गये इसके विवरणों से चलता है। डॉ. श्वान बक ने *इंडिका* के जहाँ-तहाँ पड़े विवरणों को संकलित कर *मेगास्थनीज इण्डिका* शीर्षक से अंग्रेजी में प्रकाशित कराया। शुक्ल जी द्वारा इसी पुस्तक का

---

[1] *रामचंद्र शुक्ल संचयिता* – (सं.) रामचंद्र तिवारी, पृ.458–459

अनुवाद किया गया, जिसका प्रकाशन काशी की इतिहास प्रकाशक समिति ने हिंदी हिस्टोरिकल सीरीज, भाग–3 के अंतर्गत 1906 में किया।

आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित दूसरी पुस्तक सर टी. माधव राव की पुस्तक *माइनर हिंट्स* है, जिसका प्रकाशन *राज्य प्रबंध शिक्षा* नाम से इण्डियन प्रेस, प्रयाग ने अप्रैल 1913 ई. में किया।

उनके द्वारा अनूदित तीसरी पुस्तक *आदर्श जीवन* एडम्स विलियम डेवनपोर्ट की किताब *प्लेन लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग* का अनुवाद है। यह पुस्तक नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी की 1913 से बाबू श्यामसुंदर दास के संपादकत्व में शुरू की गई 'मनोरंजन पुस्तक माला' के अधीन अनूदित की गयी। इस पुस्तक का प्रकाशन 'सभा' द्वारा 1914 ई. में किया गया।

अर्नस्ट हैकल की प्रसिद्ध कृति *द रिडिल ऑफ द यूनीवर्स* जर्मन भाषा में 1899 ई. में प्रकाशित हुई थी।[1] जर्मन वैज्ञानिक हैकल की इस पुस्तक ने वैश्विक स्तर पर हलचल मचा दी। 1900 ई. में मैसकैब ने इसका अनुवाद जर्मन से अंग्रेजी में प्रस्तुत किया। आचार्य शुक्ल ने इसी अंग्रेजी अनुवाद को मूल आधार बनाकर इसका *विश्व प्रपंच* नाम से हिंदी में अनुवाद किया। इस पुस्तक का प्रकाशन नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ने अपनी मनोरंजन पुस्तक माला (संख्या 33–34) के अंतर्गत 1920 ई. में किया। पहले-पहल यह पुस्तक दो भागों में छपी। पहले भाग में शुक्ल जी द्वारा लिखी गई 155 पृष्ठों की भूमिका थी जबकि दूसरे भाग में अनुवाद। बाद में दोनों भागों को मिलाकर एक ही पुस्तक कर दिया गया।

1922 ई. में आचार्य शुक्ल ने प्रख्यात बांग्ला उपन्यासकार राखालदास बंद्योपाध्याय के उपन्यास *शशांक* का अनुवाद किया। यह अनूदित उपन्यास नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा 1922 ई. में प्रकाशित किया गया। बांग्ला से आचार्य शुक्ल द्वारा किया गया यह इकलौता अनुवाद है।

1922 ई. में ही आचार्य शुक्ल ने सर एडविन अर्नाल्ड की प्रसिद्ध काव्यकृति *लाइफ ऑफ एशिया* का *बुद्धचरित* शीर्षक से अनुवाद किया। यह अनूदित काव्यकृति नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा 1922 ई. में प्रकाशित की गयी । इस कृति की दो

---

[1] *रामचंद्र शुक्ल* – (सं.) सुरेशचंद्र त्यागी, आशिर प्रकाशन, सहारनपुर, 1985, में भगवानदीन मिश्र के लेख '*विश्व प्रपंच* का महत्त्व', पृ.227 से उद्धृत।

महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। पहली– यह आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित एकमात्र काव्यकृति है और दूसरी– उनके द्वारा ब्रजभाषा में किया गया यह अकेला अनुवाद है।

इन पुस्तकों के अलावा आचार्य शुक्ल ने कई लेखों को अनूदित कर विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया। श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी की मानें तो शुक्ल जी के कई मौलिक-अनूदित लेख अब तक अप्राप्य हैं और उनकी श्रमपूर्वक छानबीन आवश्यक है।[1]

"आचार्य शुक्ल के समग्र साहित्य का एक बड़ा भाग अनुवाद के रूप में हमारे सामने है। आचार्य शुक्ल ने सन् 1901 ई. में, जब वे हाई स्कूल के छात्र थे, अठारहवीं शती के प्रथम चरण के अंग्रेजी निबंधकार जोसेफ एडिसन (1672–1719 ई.) के ग्यारह निबंधों की लेखमाला 'प्लेजर्स ऑफ इमैजिनेशन' का अनुवाद 'कल्पना का आनंद' शीर्षक से किया था। यह उनका पहला अनुवाद है।"[2] इसका प्रकाशन *नागरीप्रचारिणी पत्रिका* में 1904 ई. में हुआ।[3]

"काल-क्रम से आचार्य शुक्ल का दूसरा अनुवाद कार्य जॉन हेनरी न्यूमन (1801–1890 ई.) की पुस्तक *द आइडिया ऑफ ए युनिवर्सिटी डिफाइंड* के 'लिटरेचर' नामक निबंध का 'साहित्य' शीर्षक से किया गया भावानुवाद है। ....यह अनुवाद सन् 1904 ई. की *सरस्वती* में प्रकाशित हुआ था।"[4]

इन लेखों के अतिरिक्त शुक्ल जी ने कई अन्य लेखों का भी अनुवाद किया था। उसमें से कुछ उपलब्ध अनूदित लेख इस प्रकार हैं–

शुक्ल जी ने डॉ. ब्राउन के लेख 'फिलॉसफी ऑफ ह्यूमन माइंड' का अनुवाद 'सदाचार और उसकी प्रगति' शीर्षक से किया। हरबर्ट स्पेंसर के लेख 'प्रोग्रेस : इट्स लॉ एण्ड कॉजेज' का अनुवाद उन्होंने 'प्रगति : उसका नियम और निदान' शीर्षक से किया। *इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* के एक स्तंभ का अनुवाद उन्होंने 'प्राचीन पारस का संक्षिप्त इतिहास' शीर्षक से किया।[5] यह अनुवाद 1907 ई. में *सरस्वती* में प्रकाशित हुआ। उन्होंने प्रो. कृष्ण स्वामी आयंगर की पुस्तक *द इण्डियन एंटिक्वेटी* में संकलित

---

[1] कुसुमजी से उनके निवास स्थान पर मुलाकात के दौरान यह बात उन्होंने मुझसे कही।
[2] *रामचंद्र शुक्ल संचयिता* – (सं.) रामचंद्र तिवारी, भूमिका, पृ47
[3] *हिंदी आलोचना का एवरेस्ट* – रामकृपाल पाण्डेय, पृ.384
[4] *रामचंद्र शुक्ल संचयिता* – (सं.) रामचंद्र तिवारी, भूमिका, पृ47–48
[5] इसे अनुवाद माना जाए या नहीं, इस पर विवाद है।

दो लेखों का क्रमशः 'भारत के इतिहास में हूण'[1] और 'बुद्धघोष' शीर्षक से अनुवाद किया। आचार्य शुक्ल ने श्री राजेंद्रलाल मित्र के एक लेख को आधार बनाकर 'प्राचीन भारतवासियों का पहिरावा' शीर्षक से लेख लिखा। यह लेख दिसंबर 1902 ई. में *सरस्वती* में प्रकाशित हुआ।[2] उन्होंने सर आलिवर लॉज के एक निबंध का अनुवाद 'अखंडत्व' शीर्षक से किया। इसका प्रकाशन *नागरीप्रचारिणी पत्रिका* (भाग–18, सं. 3–4) में हुआ।[3] आचार्य शुक्ल ने प्रख्यात जीव विज्ञानी एवं एडिनबरा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक शेफर (Schefer) द्वारा 1912 ई. में ब्रिटिश एसोसिएशन के 82वें अधिवेशन में सभापति के पद से दिये गये व्याख्यान का सारांश 'प्राणतत्त्व' शीर्षक से लिखा था।

इतनी सूचनाओं के पश्चात् भी शुक्ल जी द्वारा अनूदित साहित्य की यह सूची फिलवक्त अपूर्ण ही है। कई जगह से यह श्रुत ज्ञान मिला है कि उनके द्वारा किये गये कई अनुवाद बेनाम ही छप गये थे। *माडर्न रिव्यू* में 1906 से 1908 ई. तक किन्हीं श्रीमान् एक्स के द्वारा लिखी गयी कई पुस्तक समीक्षाएँ एवं लेख प्रकाशित हैं।[4] कुछ लोगों के अनुसार ये श्रीमान् एक्स शुक्ल जी हो सकते हैं। *चिंतामणि–4* की भूमिका में कुसुम जी ने आचार्य शुक्ल के कई मौलिक-अनूदित एवं प्रकाशित-अप्रकाशित लेखों के खो जाने की बात लिखी है। कुल मिलाकर आचार्य शुक्ल के अनुपलब्ध लेखों को ढूँढ़कर प्रकाशित किये जाने की जरूरत है।

आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित सामग्री का युगीन मूल्यांकन

यह आश्चर्य की ही बात है कि हिंदी साहित्य के महानतम पुरोधाओं में से एक आचार्य रामचंद्र शुक्ल के द्वारा पुस्तक के रूप में अनूदित पहली कृति का संबंध इतिहास विषय से है, साहित्य से नहीं। इस तथ्य में उस समय की युगीन आवश्यकताओं का उत्स छिपा हुआ है।

वह भारतीय जनता का अपनी अस्मिता के लिये संघर्ष का दौर था। जनता की कोशिश अपने आप को पहचानने और इस क्रम में अपने अतीत को जानने, समझने तथा अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं एवं आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में व्यवस्थित करने की थी। यह भारतीय जनता का अपने भविष्य के प्रति एक साझा स्वप्न था।

---

[1] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका*, अगस्त, 1919 ई. में प्रकाशित

[2] यह लेख *चिंतामणि–4* में भी संकलित है।

[3] स्रोत – *सम्मेलन पत्रिका*, भाग–70, संख्या 2–4, पृ.493

[4] वही, पृ.493

यही वजह है कि उस समय हो रही इतिहास संबंधी सभी खोजों एवं अनुसंधानों पर शिक्षित जनों की सतर्क नजर थी। इसका प्रमाण उस समय की विविध पत्रिकाओं में छपीं तमाम इतिहास संबंधी खोजपरक रिपोर्टें हैं। खुद आचार्य शुक्ल के *सरस्वती, माधुरी, नागरीप्रचारिणी पत्रिका* आदि पत्रिकाओं में इतिहास संबंधी आधुनिक अनुसंधानों को विषयवस्तु बनाकर तमाम लेख छपे। 'प्राचीन भारतवासियों का पहिरावा'[1], 'हुएन–संग'[2], 'प्राचीन पारस का संक्षिप्त इतिहास'[3], 'भारत के इतिहास में हूण'[4], 'महाराज कनिष्क का स्तूप'[5], 'बुद्धदेव की हड्डियाँ'[6], 'जापानी खोज'[7], 'भीटा के खंडहर'[8], 'प्राचीन भारत का एक शक राजा'[9] आदि शुक्ल जी के लेख इसका उदाहरण हैं।[10]

"यूनानी यात्रियों ने 324 ई.पू. में भारत पर हमला करनेवाले सिकंदर महान् के एक समकालीन के रूप में सन्द्रोकोत्तस का नामोल्लेख किया है। यह सिद्ध किया गया है कि यूनानी विवरणों का यह सन्द्रोकोत्तस और चन्द्रगुप्त मौर्य, जिनके राज्यारोहण की तिथि 322 ई.पू. निर्धारित की गई है, एक ही व्यक्ति थे। यह पहचान प्राचीन भारत के तिथिक्रम के लिए एक सुदृढ़ आधारशिला बन गयी। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में दूत बनकर आये मेगास्थनीज की *इंडिका* उन उद्धरणों के रूप में ही सुरक्षित है जो अनेक प्रख्यात लेखकों की रचनाओं में आये हैं। इन उद्धरणों को एक साथ मिलाकर पढ़ने पर न केवल मौर्य शासन व्यवस्था के बारे में ही, बल्कि मौर्यकालीन सामाजिक वर्गों और आर्थिक क्रियाकलाप के बारे में भी मूल्यवान जानकारी मिलती है।"[11] यह वही चन्द्रगुप्त मौर्य हैं जिसने उस नन्द राजवंश का कौटिल्य नाम से विदित चाणक्य की सहायता से तख्ता पलट दिया था, जिसकी विशाल और शक्तिशाली सेना के भय से सिकन्दर के लंबी लड़ाई से थके सैनिकों ने व्यास नदी के आगे बढ़ने से

---

[1] *सरस्वती* – दिसंबर, 1902 ई.
[2] *सरस्वती* – जुलाई, 1904 ई.
[3] *सरस्वती* – 1907 ई.
[4] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका,* 1919 ई.
[5] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका,* सितंबर 1909 ई.
[6] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका,* नवंबर 1909 ई.
[7] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका,* फरवरी 1910 ई.
[8] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका,* मार्च 1910 ई.
[9] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका,* अगस्त 1910 ई.
[10] सूचनाओं के संकलन में *चिंतामणि – 4* की सहायता ली गयी है।
[11] *प्राचीन भारत* – रामशरण शर्मा, एन. सी. ई. आर. टी, पृ.20

मना कर दिया था। यह भारतवासियों के लिए गौरव की बात थी कि जिस सिकन्दर महान् को पश्चिमी इतिहासकारों ने विश्वविजेता की उपमा दे रखी थी, उसका विश्वविजय का स्वप्न इसी भारतभूमि पर खंडित हो गया। यह बात भारतीयों के लिए उत्साहवर्धक इसलिए भी थी, क्योंकि अंग्रेज इतिहासकारों ने समूची भारतीय जाति को शाश्वत कमजोर जाति के रूप में चिह्नित कर रखा था।

एक हतदर्प जाति एवं देश को उसके स्वर्णिम अतीत का ज्ञान सार्थक आत्मसंबल प्रदान कर सकता है। शुक्ल जी के इस अनुवाद को इसी कोशिश की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में पहचाना जा सकता है। *मेगास्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन* की भूमिका में आचार्य शुक्ल का यह उत्साह अनायास नहीं है– "धन्य वह घड़ी थी जिसमें सर विलियम जोन्स इन पुराणों की नामावली के चंद्रगुप्त और यूनानियों के 'सैण्ड्राकोटस' (Sandrakottos) में सादृश्य देखकर चौंके थे।"[1] इस भूमिका में शुक्ल जी का एक उद्देश्य आर्य जाति के वीरोचित और गौरवपूर्ण अतीत का प्रत्याख्यान भी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आचार्य शुक्ल ने पारसी जाति को आर्यों की एक शाखा बताकर उनके स्वर्णिम अतीत को भारतीय आर्यों के अतीत से जोड़ा है। इस पुस्तक की भूमिका में शुक्ल जी ने सिकंदर के विश्वविजय अभियानों से लेकर चंद्रगुप्त मौर्य के उत्थान तक का वर्णन भारतीय एवं यूनानी ग्रंथों के आधार पर किया है। शुक्ल जी द्वारा अनूदित यह कृति और विशेषकर इसकी भूमिका प्राचीन भारत के इतिहास को भारतीय दृष्टि से देखने का प्रयास है।

उस युग की आवश्यकता भारतीय समाज को चहुँमुखी विकास और आधुनिक चेतना से लैस करने की थी। आत्म-गौरव का संबल प्राप्त करने के पश्चात् इस ओर ध्यान देना अति आवश्यक था। इसकी शुरुआत भारतेंदु युग से ही हो चुकी थी और द्विवेदी युग में यह प्रयास चरम पर था। द्विवेदी युग में साहित्य को ज्ञान राशि का संचित कोश माना जाने लगा और लगातार यह कोशिश की जाने लगी कि येन-केन-प्रकारेण जनता के ज्ञान की परिधि को यथासंभव बढ़ाया जाए। साथ ही, इस बात का ध्यान भी रखा गया कि भौतिक जीवन की सामान्य स्थितियों को समझने के लिये लोगों को अंग्रेजी भाषा का मुँह न देखना पड़े और हिंदी भाषा अपने पाठकों की बौद्धिक पिपासा को संतुष्ट कर सकने में सक्षम हो सके।

---

[1] *चिंतामणि – 4*, पृ.21

हिंदी में प्रशासन व्यवस्था को लेकर संभवतः 1913 ई. तक कोई बेहतर पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। आचार्य शुक्ल ने प्रशासन के सामान्य सिद्धांतों एवं स्थितियों को हिंदी में उपलब्ध कराने के लिए सर टी. माधव राव की पुस्तक *माइनर हिंट्स* का अनुवाद *राज्य प्रबंध शिक्षा* नाम से किया। आचार्य शुक्ल ने इस पुस्तक की भूमिका में अपने उद्देश्य को प्रकाशित करते हुए लिखा– "समाज के हित और सुभीते के लिए यह आवश्यक है कि उसमें अनुभव की हुई बातों का अच्छा संचय रहे जिससे लोगों को अपना कर्त्तव्य स्थिर करने के लिए इधर-उधर बहुत भटकना न पड़े।"[1]

सर टी. माधव राव ट्रावणकोर राज्य के दीवान थे। अपने अनुभवहीन राजा को शासकीय कार्यों को सुचारु ढंग से चलाने के प्रति शिक्षित करने हेतु उन्होंने यह पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक में राज्य प्रबंधन में आनेवाली कठिनाइयों, राजा एवं प्रजा के मध्य संबंध तथा प्रशासकीय पेचीदगियों की चर्चा की गयी है।

TH-12429

Jawaharlal Nehru University Library

निश्चित रूप से वह संघर्ष का दौर था। ऐसे समय में व्यक्ति का नैतिक एवं आत्मिक रूप से संपुष्ट होना अत्यंत आवश्यक है। द्विवेदी युग का साहित्य बहुधा इस आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया। इसी कारण द्विवेदी युग की रचनाओं पर उपदेशपरकता का आरोप मढ़ दिया जाता है, बिना इस बात का ख्याल रखे कि साहित्य के प्रति यह दृष्टिकोण युगीन आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में आत्मचिंतन था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आचार्य शुक्ल ने एडम्स विलियम डेवनपोर्ट की पुस्तक *प्लेन लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग* का *आदर्श जीवन* शीर्षक से अनुवाद किया। इस पुस्तक के उद्देश्य की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने इसकी भूमिका में लिखा है– "वह अंग्रेजी की उन पुस्तकों में से है जिनका उद्देश्य युवा पुरुषों के अंतःकरण में उत्तम संस्कार उत्पन्न करना है। इस पुस्तक में विवेक, बुद्धि और स्वास्थ्य इन तीनों की वृद्धि के संबंध में अलग-अलग विचार करके मनुष्य जीवन का एक सर्वांगपूर्ण और उच्च आदर्श सामने रखा गया है। ...हिंदी में ऐसी पुस्तकें देखने की चाह अब लोगों को हो चली है।"[2]

उस समय के साहित्यकारों और पत्रकारों की यह लगातार कोशिश रही कि उनके देश के लोग बाहरी दुनिया के नवीनतम विचारों एवं अनुसंधानों के बारे में जानें। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ऐसे अनुवादों को अत्यधिक प्रोत्साहित कर रहे थे। इसी

---

[1] वही, पृ.228
[2] वही, पृ.237

की अगली कड़ी के रूप में आचार्य शुक्ल ने हैकल के प्रसिद्ध ग्रंथ *द रिडिल ऑफ द यूनीवर्स* का अनुवाद *विश्व प्रपंच* नाम से किया। "हैकल ने जीव-विकास के नियम, जाति-विकास के सिद्धांत और अजैव पदार्थों में जीवन की उत्पत्ति जैसी अपनी सैद्धांतिक स्थापनाओं में डार्विन के मूल सिद्धांतों को पर्याप्त विकसित और पुष्ट किया था। इसका सर्वाधिक विरोध चर्च की ओर से हुआ। प्रत्ययवादी दार्शनिकों और प्रत्ययवादी प्रकृतिविदों ने भी इसके विरोध में आवाज उठायी। प्रगतिशील भौतिकवादी वैज्ञानिकों ने इसका जोरदार स्वागत किया। स्वयं लेनिन ने उस समय इसके संबंध में बहुत ऊँची धारणा व्यक्त की।"[1]

आचार्य शुक्ल के सम्मुख यह पुस्तक चुनौती और प्रेरणा दोनों रूपों में थी। ऐसा उक्त पुस्तक की भूमिका में स्पष्ट देखा जा सकता है जिसमें उन्होंने हैकल से सहमति और असहमति दोनों व्यक्त की है। जीवन की रहस्यवादी व्याख्या के प्रबल विरोधी आचार्य शुक्ल जीवन की अतिभौतिक अवधारणा से भी असहमत थे। वे मनुष्य और उसके आसपास के संसार को चेतना एवं भौतिक तत्त्व का संयोजन मानते थे। अपने इन्हीं विचारों के आलोक में उन्होंने हैकल की आलोचना की।

अकसर आचार्य शुक्ल को वर्णाश्रम का कट्टर समर्थक घोषित कर दिया जाता है। इस बात पर विद्वानों में गंभीर मतभेद हो सकता है कि वे वर्णाश्रम के समर्थक थे या नहीं, किंतु यह एक तथ्य है कि आचार्य शुक्ल ने अपने तमाम लेखों में भारतीय जाति व्यवस्था की सबसे पहले गंभीर रूप से चूलें हिलानेवाले बुद्ध और उनके अनुयायिओं को अत्यंत आदर एवं प्रेम सहित याद किया है। 'महाराज कनिष्क का स्तूप',[2] 'बुद्धदेव की हड्डियाँ'[3], 'जापानी खोज'[4], 'भीटा के खंडहर'[5] जैसे तमाम लेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। यह भी एक तथ्य है कि उन्होंने सिर्फ एक काव्यकृति का अनुवाद किया है और वह कृति जाति व्यवस्था के महानतम विरोधी भगवान बुद्ध के जीवन पर आधारित है।

---

[1] *रामचंद्र शुक्ल संचयिता* – (सं.) रामचंद्र तिवारी, पृ49
[2] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका*, सितंबर, 1909 ई.
[3] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका*, नवंबर, 1909 ई.
[4] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका*, फरवरी, 1910 ई.
[5] *नागरीप्रचारिणी पत्रिका*, मार्च, 1910 ई.

आचार्य शुक्ल द्वारा सर एडविन अर्नाल्ड की काव्यकृति *लाइट ऑफ एशिया* का *बुद्धचरित* शीर्षक से किया गया काव्यानुवाद एक साथ कई मोर्चों को साधता है। पहला– इस अनुवाद ने बुद्ध से संबंधित उन नयी चर्चाओं को जनता की अभिरुचि से जोड़ा, जिनकी शुरुआत उन दिनों बुद्ध से संबंधित पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थलों की खुदाई से हुई थी। दूसरा– एक वैश्विक धर्म के रूप में स्थापित बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध के जन्म[1] और कर्मक्षेत्र के रूप में भारत देश का यह काव्यकृति महिमामंडन करती है। तीसरा– यह कृति हिंदू समाज में मौजूद जाति व्यवस्था जैसी बुराइयों का प्रतिरोध करती है। चौथा– यह कृति भूले हुए गौरव को याद कराने का प्रयास थी। शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* के वक्तव्य में लिखा है– "जिन बातों से हमारा गौरव था उन्हें भूलते भूलते आज हमारी यह दशा हुई।"[2]

आचार्य शुक्ल हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत एवं बांग्ला के गम्भीर अध्येता थे। उन्होंने बांग्ला से भी एक कृति का अनुवाद किया। बांग्ला के प्रसिद्ध उपन्यासकार राखालदास बंद्योपाध्याय के लोकप्रिय उपन्यास *शशांक* का इसी शीर्षक से 1922 ई. में किया गया यह अनुवाद आचार्य शुक्ल द्वारा बांग्ला से किया गया एकमात्र अनुवाद है। इस अनुवाद में भी अपने स्वर्णिम अतीत को जानने, समझने और गौरवान्वित होने का मर्म छिपा हुआ है। अनूदित उपन्यास *शशांक* की भूमिका में आचार्य शुक्ल लिखते हैं– "अपना स्वरूप भूले हुए हमें बहुत दिन हो गये। अपनी प्रतिभा द्वारा हमारे सामने हिंदुओं के पूर्व जीवन के माधुर्य का चित्र रखकर आपने बड़ा भारी काम किया।"[3] शुक्ल जी के इस कथन में राखाल बाबू के प्रति सम्मान का भाव तो है ही, इससे भी अधिक यह कथन इस अनुवाद का मूल उद्देश्य ज्ञापित करता है।

आचार्य शुक्ल ने अपने अनुवादों के माध्यम से साहित्य, व्यक्ति, समाज, चरित्र, ज्ञान-विज्ञान सभी को संपुष्ट करने की कोशिश की। यह उनके युग की आवश्यकता थी, जिसकी वजह से एक ही व्यक्ति विविध विधाओं और दिशाओं में लेखनी चलाने के लिए प्रवृत्त हो उठता था। आचार्य शुक्ल अपना युग कर्त्तव्य निभाने में सफल रहे। निश्चित रूप से उनके और उनके युग के अन्य सहयोगी युगधर्मा व्यक्तियों के योगदान

---

[1] कुछ इतिहासकार बुद्ध के जन्म स्थल लुम्बनीवन को नेपाल की तराई में न मानकर भारत के कर्नाटक राज्य में मानते हैं। फिलहाल यह विचार विवादित है।

[2] *बुद्धचरित* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी; प्रथम संस्करण, सं. 2042 वि, वक्तव्य, पृ.1

[3] *शशांक* – राखालदास बंद्योपाध्याय, अनुवादक – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2042 वि., भूमिका, पृ.1

बिना हमारा हिंदी साहित्य और समाज इतना विकसित नहीं हो सकता था, जितना आज है।

अनुवाद हेतु *लाइट ऑफ एशिया* के चयन का कारण

1922 ई. में *सरस्वती* में छपे अपने लेख 'तक्षशिला की इमारतें' में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा– "भारतवर्ष के शतशः नहीं; सहस्रशः कीर्ति स्तम्भ काल की कुक्षि में चले गये हैं। उनका अब कहीं पता नहीं। पुराने खंडहर खोदने से यदि कहीं उनका कोई भग्नांश निकल आता है तो पुराण-वस्तु-विज्ञानी उससे ग्रीस, फारिस, आसिरिया और बैबीलोनिया की बू निकालने लगते हैं।"[1] द्विवेदी जी के इस कथन में अपने राष्ट्र-गौरव के अपहृत कर लिये जाने की पीड़ा छिपी हुई है। साथ ही, आक्रोश भी विद्यमान है। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि अपनी औपनिवेशिक दासता के युग में भारत में जो भी गौरव की वस्तु शेष थी या प्राचीन गौरव का बखान करनेवाली वस्तु प्राप्त होती, उस पर तुरंत पाश्चात्य प्रभाव का होना मढ़ दिया जाता था। इसका एक रोचक उदाहरण है– भक्ति-भावना के उद्‌भव की व्याख्या करते हुए ग्रियर्सन द्वारा कृष्ण को क्राइस्ट का भ्रंश रूप बना डालना और संपूर्ण भक्तिकाव्य के उद्‌भव का ईसाई प्रभाव के आधार पर विश्लेषण।

लेकिन आधुनिक युग में आकर 'अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त' दूसरे मार्ग भी थे– क्रांति का मार्ग! कलम का मार्ग! क्रांतिकारियों ने सशस्त्र और निःशस्त्र, हिंसात्मक और अहिंसात्मक क्रांति का मार्ग अपनाया। दूसरी ओर कलम के सिपाहियों ने कलम उठा ली। इन कलम के सिपाहियों ने या तो अपने शोषक शासकों की खून चूस वृत्ति के विरुद्ध सीधे लिखना शुरू किया या फिर वे राष्ट्र की संस्कृति के गौरव चिह्नों को संरक्षित एवं उजागर करने लगे। यह अनायास नहीं है कि इस दौर में इतिहास संबंधी विविध अनुसंधानों को लेकर सभी पत्रिकाओं में लगातार लेख लिखे जा रहे थे।

बुद्धचरित इसी सांस्कृतिक क्रांति की एक रचनात्मक मशाल थी। *बुद्धचरित* में अपने वक्तव्य के पहले ही अवतरण में आचार्य शुक्ल ने अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है– "रामकृष्ण की इसी लीलाभूमि पर भगवान बुद्धदेव भी हुए हैं जिनके प्रभाव से एशियाखंड का सारा पूर्वार्द्ध भारत को इस गिरी दशा में भी प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि

[1] *सरस्वती*, भाग–23, संख्या–3, पृ.188

से देखता चला जा रहा है। रामकृष्ण के चरितगान का मधुर स्वर भारत की सारी भाषाओं में गूँज रहा है पर बौद्ध धर्म के साथ ही गौतम बुद्ध की स्मृति तक जनता के हृदय से दूर हो गयी है। 'भरथरी' और 'गोपीचंद' के जोगी होने के गीत गाकर आज भी कुछ रमते जोगी स्त्रियों को करुणार्द्र करके अपना पेट पालते चले जाते हैं, पर कुमार सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण की सुध दिलानेवाली वाणी कहीं नहीं सुनाई पड़ती है। जिन बातों से हमारा गौरव था उन्हें भूलते भूलते आज हमारी यह दशा हुई।"[1]

भूले हुए गौरव को पुनः याद करना अपने अस्तित्व की पुनर्सर्जना करना ही है। इस याद करने में आत्मीय भाव भी छिपा हुआ है। अपने महान् पूर्वजों को याद करने में दरअसल अपना होना याद आता है और उनके गौरव के साथ ही अपना विस्मृत गौरव भी प्रतिस्थापित होता है।

व्यक्ति जब भी आत्मीय जनों को याद करता है तो अपनी भाषा में ही याद करता है। यद्यपि आचार्य शुक्ल की मातृभाषा ब्रजभाषा नहीं थी, तथापि वह अपने संस्कृत रूप में सारे उत्तरापथ की काव्यभाषा रही थी। अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* के वक्तव्य के अंतिम अवतरण में लिखा है– "जिस वाणी में कई करोड़ हिंदीभाषी रामकृष्ण के मधुर चरित का स्मरण करते आ रहे हैं उसी वाणी में भगवान बुद्ध को स्मरण कराने का यह लघु प्रयत्न है। यद्यपि यह वाणी ब्रजभाषा के नाम से प्रसिद्ध है पर वास्तव में अपने संस्कृत रूप में यह सारे उत्तरापथ की काव्यभाषा रही है और है।"[2]

इसी के साथ एक रोचक प्रश्न यह भी उठाया जा सकता है कि आखिर उन्होंने अनुवाद के लिए *लाइट ऑफ एशिया* का ही चयन क्यों किया, जबकि एक तो इसके रचयिता सर एडविन अर्नाल्ड एक विदेशी व्यक्ति थे और दूसरे उनके सामने अश्वघोष द्वारा संस्कृत में लिखी गयी प्रख्यात कृति *बुद्धचरित* भी एक सशक्त विकल्प के रूप में मौजूद थी।

आचार्य शुक्ल ने *बुद्धचरित* के वक्तव्य में इस प्रश्न पर कोई चर्चा नहीं की है। मेरे विचार से अनुवाद हेतु *लाइट ऑफ एशिया* के चयन के पीछे अन्य जो भी कारण रहे हों, दो कारण मुख्य होंगे। पहला कारण यह हो सकता है कि *लाइट ऑफ एशिया*

---

[1] *बुद्धचरित* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, वक्तव्य, पृ.1
[2] *वही,* पृ.2

आधुनिक युग की कृति थी, जबकि अश्वघोष की कृति *बुद्धचरित* प्राचीन युग की। आचार्य शुक्ल अपने प्राचीन गौरव को आधुनिक दृष्टि से देखना चाह रहे होंगे। इसका प्रमाण स्वयं *बुद्धचरित* है जिसमें आचार्य शुक्ल समकालीन समस्याओं को बार-बार उठाते हैं। अगले अध्यायों में हम *बुद्धचरित* के इस पक्ष की सविस्तार चर्चा करेंगे।

अपना गौरव और बड़प्पन अपने ही मुख से कहना अच्छा नहीं लगता। व्यक्ति दरअसल गौरवान्वित तो तब होता है जब दूसरे भी और विशेषकर घर के बाहर के लोग उसकी प्रशंसा करें। *लाइट ऑफ एशिया* के प्रसंग में इस दूसरे और बाहरी व्यक्ति का संबंध उस देश से है जिसका भारतवर्ष औपनिवेशिक दास था। *लाइट ऑफ एशिया* के चयन का दूसरा कारण यह हो सकता है कि आचार्य शुक्ल अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान को जगाते हुए अपने राष्ट्र के लोगों को संभवतः यह संदेश देना चाहते थे कि भारत के प्राचीन गौरव की प्रशंसा उस देश के नागरिक भी करते हैं, जिसने हमें अपनी औपनिवेशिक दासता में जकड़ रखा है।

द्वितीय अध्याय

काव्यानुवाद की समस्याएँ एवं *बुद्धचरित*

(क) काव्यानुवाद की समस्याएँ

(ख) सांस्कृतिक अंतर के परिप्रेक्ष्य में *लाइट ऑफ एशिया* और *बुद्धचरित*

(ग) *लाइट ऑफ एशिया* तथा *बुद्धचरित* में वस्तु और शिल्प की समानताएँ एवं अंतर

(घ) *लाइट ऑफ एशिया* में बौद्ध दर्शन एवं *बुद्धचरित* में उसका अनुवाद

(ड.) *लाइट ऑफ एशिया* के हिंदी अनुवादक द्वारा ली गई छूटें

काव्यानुवाद की समस्याएँ

नयी समीक्षा की अतिवादी 'नीबू-निचोड़' प्रवृत्ति से संत्रस्त होकर इस प्रवृत्ति के जनक माने जानेवाले टी. एस. एलियट ने 'समीक्षा के सीमांत' में लिखा– "कविता का पाठक कविता को केवल समझना नहीं चाहता, बल्कि उसका आस्वादन भी करना चाहता है।"[1]

यह बात आलोचना के लिए जितनी महत्त्वपूर्ण है, काव्यानुवाद के लिए उससे कमतर नहीं; बल्कि एक मायने में देखें तो काव्यानुवाद के लिए आस्वादन प्रक्रिया का संरक्षण जितना श्रमसाध्य है, उतना ही जटिल। एक ओर काव्यानुवादक को मूल की आस्वाद प्रक्रिया को सुरक्षित रखना पड़ता है तो दूसरी ओर लक्ष्य भाषा के पाठकों के सामने ऐसी अनूदित कृति रखने की कोशिश करनी पड़ती है जो उन्हें उन्हीं की भाषा और संस्कृति की उपज लगे, ताकि वे अनूदित कृति के साथ आत्मीय संबंध सहज रूप से स्थापित कर सकें। किसी अनूदित कृति की इस विशेषता को अनुवादक की सफ़लता से जोड़कर देखा जाता है। प्रख्यात अनुवादक हरिवंश राय बच्चन के अनुसार– "अगर कृति पढ़कर अनुवाद की प्रतीति होती है तो वह निम्न श्रेणी का अनुवाद माना जाएगा। अनूदित कृति से कृत्रिमता का अहसास नहीं होना चाहिए।"[2] इस प्रकार अनुवाद कर्म दुधारी तलवार पर चलने के समान है।

सामान्य अनुवाद के संबंध में यदि अनुवादक दोनों भाषाओं (लक्ष्य एवं स्रोत भाषा) का ज्ञाता है और उसे विषय से संबंधित पारिभाषिक समतुल्यों का ज्ञान है, तो वह एक सफल अनुवादक हो सकता है, किंतु साहित्यिक अनुवाद और विशेषतः काव्यानुवाद के परिप्रेक्ष्य में सिर्फ इतनी ही योग्यता पर्याप्त नहीं है।

जॉन ड्राइडन ने अपने लेख 'काव्यानुवाद की कला' (अनु. अरविंद कुमार) में लिखा है– "...रूपरेखा यथावत बना लेना, नाक नक्श सही उतार लेना, बिल्कुल ठीक अनुपात कर लेना और संभवतः काम चलाऊ रंग भी भर लेना– यह सब एक बात है; लेकिन इन सब में लालित्य, मुद्रा, भाव-भंगिमा और रंगों का उतार-चढ़ाव डाल पाना, ऐसी सचलता भर पाना जो इन सबमें जान डाल दे– यह एक बिल्कुल अलग बात है।"[3]

---

[1] *पाश्चात्य साहित्य-चिंतन* – निर्मला जैन, कुसुम बाँठिया, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ.183

[2] *अनुवाद*, पत्रिका, स्वर्ण जयंती विशेषांक – डॉ. आरसु के लेख – 'अनुवाद बच्चन की अनुदृष्टि में' से उद्धृत।

[3] *अनुवाद* पत्रिका, स्वर्ण जयंती विशेषांक, जनवरी–मार्च, 1987, पृ126

इस बात से यह प्रश्न भी मुखर होता है कि आख़िर काव्यानुवाद के दौरान कृति का सर्वस्व, उसका प्राण क्या है?

अन्य भाषिक संरचनाओं की भाँति कविता भी आखिरकार एक भाषिक संरचना है। कविता की अभिव्यक्ति का प्राथमिक स्रोत उसकी भाषिक संरचना है और पाठक कविता के जिस तत्त्व से प्रथमतः रू-ब-रू होता है वह उसकी भाषिक संरचना ही है। किंतु अन्य भाषिक संरचनाओं से इसका एक मौलिक अंतर यह है कि कविता में भाषा अपने सर्वाधिक संश्लिष्ट रूप में रहती है।

"वस्तुतः एक साहित्यिक कृति पारस्परिक भिन्न भाषिक प्रणालियों की जटिल व्यवस्था एवं मानव संस्कृति की विस्तृत व्यवस्था के द्वंद्वात्मक संबंधों पर आश्रित रहती है और उसकी इस संपूर्ण संरचना की परख किए बिना अनुवादक जब केवल काव्यगत अन्वयांतर पर अपना ध्यान जमाता है या किसी निर्दिष्ट उद्देश्य से साकल्य के स्थान पर किसी एक पक्ष को उभारता है तब अनुवाद में परेशानी उत्पन्न होती है। आधुनिक आलोचना में जब यह कहा जाता है कि शब्द और अर्थ अविभाज्य हैं और शब्द एक विशेष संदर्भ में एक अनुपम तथा अतुलनीय अर्थ को प्रकट करता है तो उसके अन्वयांतर का प्रश्न ही नहीं उठता। अन्वयांतर समानार्थकता पर निर्भर करता है और अनुवाद स्रोत भाषा के अर्थ लक्ष्य भाषा के अर्थ में प्रतिस्थापित करता है।"[1]

किंतु क्या प्रतिस्थापन की प्रक्रिया सहज है? जर्मनी के लाइपजिग स्कूल के प्रमुख विचारक आटो कादे ने 1968 ई. में समतुल्यता और प्रतिस्थापन की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए शब्दों की चार प्रकार की मुख्य कोटियाँ प्रस्तुत कीं। (i) पूर्ण समतुल्य– जो मानक शब्दावली की तरह हर भाषा में पूर्ण रूप से एकसमान और एकअर्थी होता है, (ii) वैकल्पिक समतुल्य– एक शब्द के लिए कई समतुल्य प्रतिस्थापक शब्द, (iii) आसन्न समतुल्य– एक शब्द के अर्थांश से समतुल्य एवं (iv) निष्प्रभावी समतुल्य– ऐसा शब्द जो किसी भाषा विशेष की सांस्कृतिक विशिष्टता से संबंधित हो और किसी अन्य भाषा में उसका समतुल्य शब्द असंभव हो।

यद्यपि कादे की शब्द आधारित अनुवाद प्रणाली अनेक दोषों से ग्रस्त है, किंतु यह नहीं भूला जा सकता कि किसी भी भाषा के शब्द उस भाषा की प्राथमिक

---

[1] डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी के लेख – 'साहित्यिक अनुवाद के संदर्भ में अनुवाद अध्ययन का स्वरूप' से उद्धृत; *अनुवाद* पत्रिका, जनवरी–जून 2000, शतक विशेषांक

इकाई के अनिवार्य घटक हैं। कादे द्वारा प्रस्तुत कोटियों के आलोक में यदि काव्यानुवाद की चर्चा की जाए तो अकसर कविता का बहुत कुछ ऐसे शब्द से निर्मित होता है जिसके प्रतिस्थापक के रूप में आसन्न समतुल्य या निष्प्रभावी समतुल्य ही प्राप्त होते हैं। जाहिर है ऐसी कविता का अनुवाद कुछ ऐसे समतुल्यों के आधार पर करना होगा जो कवि के अभिप्रेत को पूर्णतया अभिव्यक्त न कर सकें अथवा कुछ बदल कर प्रस्तुत करें।

सर जॉन डेन्हम ने *एनियड* का अनुवाद करते हुए उसकी भूमिका में लिखा– "कविता एक ऐसी 'स्पिरिट' है जो एक भाषा से दूसरी में उड़ेलने के दौरान सबकी सब उड़ जाती है और पात्रांतर करते वक्त अगर नई 'स्पिरिट' न डाली जाए तो पात्र में कुछ भी नहीं बचेगा।"[1] निश्चित रूप से ऐसा लिखते समय सर जॉन डेन्हम के सामने सर्जनात्मकता की तमाम परेशानियों में से उपर्युक्त परेशानियाँ भी रही होंगी।

शब्द और अर्थ के संबंध को जाक देरिदा ने संपृक्त और प्रतिपत्तित मानने से इंकार करते हुए अर्थ के आधार को पूर्णतया अस्थिर माना। देरिदा का विखंडनवाद फर्दिनांद द स्यूसोर के भाषाविषयक विचारों का तार्किक परिणाम है। स्यूसोर ने भाषा को एक संकेत प्रणाली के रूप में चिह्नित किया, जिसका प्रत्येक संकेत एक संकेतक और एक संकेतित से मिलकर बना होता है। संकेतक और संकेतित का संबंध यादृच्छिक होता है। वस्तुतः यह संबंध सामाजिक तौर पर मनमाने (orbitrary) ढंग से मान लिये जाने के कारण निर्मित होता है। साथ ही, संकेतक 'क' का अर्थ संकेतित 'क' इसलिए भी होता है क्योंकि वह संकेतित 'ख', 'ग', 'घ' नहीं है या नहीं माना गया है। "स्यूसोर का निष्कर्ष है कि भाषा प्रणाली में सिर्फ भिन्नताएँ (differences) होती हैं। अर्थ संकेतों में रहस्यपूर्ण ढंग से छिपा हुआ नहीं होता है बल्कि वह वृत्तिमूलक होता है। यह दूसरे संकेतों से उसकी भिन्नता का परिणाम होता है।"[2]

देरिदा ने भिन्नता की प्रक्रिया को अनंत शृंखला के रूप में प्रस्तुत किया। "अगर आप किसी संकेतक का अर्थ जानना चाहते हैं तो शब्दकोश में जो आप पाएँगे वह कुछ और संकेतक ही होंगे जिसके संकेतित को आपको ढूँढ़ना होगा। इस प्रकार यह प्रक्रिया अनंत ही नहीं बल्कि चक्राकार भी है : संकेतक संकेतित में और संकेतित संकेतक में लगातार बदलते रहेंगे लेकिन आप किसी ऐसे संकेतित तक नहीं पहुँच पाएँगे जो खुद

---

[1] *अनुवाद* पत्रिका, स्वर्ण जयंती विशेषांक, पृ.10

[2] *अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन* – डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा, पृ.24

में संकेतक न हों। ...अर्थ किसी एक संकेत में नहीं बल्कि संकेतकों की एक पूरी शृंखला में बिखरा हुआ होता है जहाँ वह 'उपस्थिति' और 'अनुपस्थिति' के बीच झिलमिलाता रहता है। ...देरिदा का मुख्य सैद्धांतिक आग्रह यह रहा है कि चूँकि अर्थ का आधार अस्थिर होता है और बीज-शब्द या 'गहन संरचना' जैसी कोई चीज नहीं होती, इसलिए एक ही भाषा के अंतर्गत या एक भाषा से दूसरी भाषा में शुद्ध संकेतितों का परिवहन (Transport) असंभव है। ऐसे में अनुवाद की धारणा बदलकर हमें रूपांतरण की बात करनी चाहिए : नियंत्रित रूपांतरण (Regulated Transformation) : एक भाषा से दूसरी भाषा में, एक पाठ से दूसरे पाठ में नियंत्रित रूपांतरण।"[1]

दूसरी ओर साहित्यिक अनुवाद को शाब्दिक अनुवाद के रूप में देखने पर अनुवादक बुरी तरह असफल होगा। दरअसल प्रत्येक कृति में उसके पाठ के साथ ही उसके कर्ता द्वारा संप्रेषित अर्थ भी छिपा होता है। अनुवादक का कार्य न केवल प्रदत्त पाठ का रूपांतरण है, बल्कि उस संप्रेषित अर्थ का भी लक्ष्य भाषा में पाठ के माध्यम से पुनर्प्रस्तुतीकरण है जो कृतिकार का मूल उत्स है और अंततः कृति का अभिप्रेत भी। इसीलिए अनुवादक अपने अनुवाद कर्म की शुरुआत करने से पूर्व कृति की व्याख्या का उत्तरदायित्व भी वहन करता है। इस क्रम में अनुवादक की अपनी समझ और विचारधारा व्याख्या को प्रभावित करती है। यह अनायास नहीं है कि जहाँ विज्ञान विषयक कृतियों के लिए किसी भाषा में सिर्फ एक अनुवाद ही पर्याप्त माना जाता है, वहीं साहित्यिक कृतियों के विविध अनुवादों में परस्पर होड़ सी मची रहती है और प्रत्येक परवर्ती अनुवाद मूल के अधिक निकट पहुँचने एवं अपनी भाषा में भी पैठ बनाने के लिए पूर्ववर्ती अनुवादों से संघर्ष करता है, साथ ही प्रेरणा भी लेता है।

व्याख्या के क्रम में शब्दशः अनुवाद की प्रक्रिया पीछे छूटने लगती है। वस्तुतः ऐसा करना तार्किक रूप से भी असंभव है। "शब्द के लिए शब्द खोजनेवाला अनुवादक एक साथ कई कठिनाइयों में ऐसा उलझ जाता है कि उससे बाहर निकलना उसके लिए कठिन हो जाता है। उसे मूल लेखक के विचार तथा शब्द दोनों का ध्यान रखना पड़ता है और अपनी भाषा में प्रत्येक विचार व शब्द के समरूप भी खोजने होते हैं। इसके अतिरिक्त उसे छंदों के चरणों एवं तुक की दासता भी ढोनी पड़ती है। यह

---

[1] वही, पृ.25–26

बहुत कुछ बँधे पैरों से रस्सियों के ऊपर नाचने जैसा है, जिसमें आप सावधानी बरतकर गिरने से भले ही बच जायें लेकिन गति के सौंदर्य की आशा नहीं कर सकते।"[1]

अनुवादक की कठिनाई का एक सिरा मूल पाठ के अर्थ वलयों और उसके संप्रेषण से जुड़ा हुआ है तो दूसरा सिरा स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा के ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विकास में अंतर से। साथ ही, काव्यानुवादक को कविता के आंतरिक संगीत और उसकी सौंदर्याभिरुचि का भी परिचालन करना पड़ता है। कविता के अनुवाद में हम शब्दों को उनके समतुल्यों द्वारा प्रतिस्थापित कर सकते हैं। कुछ शब्द जो स्रोत भाषा की अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं से उपजे होते हैं उन्हें छोड़ दिया जाए तो किसी भी भाषा की शब्दावली का बहुत कुछ ऐसा होता है जो दूसरी भाषा में भी अन्य रूप में मौजूद रहता है। आसानी से ही कोई अनुवादक किसी गेय विन्यास को भी तुकांतवादी शाब्दिक अनुक्रम में रूपांतरित कर सकता है, किंतु इन सबसे कहीं महत्त्वपूर्ण है– 'उस अर्थ' की खोज और उसका संप्रेषण। कविता के तमाम अर्थ वलयों के भीतर कविता का सूक्ष्मतम या मूल प्रयोजन छिपा रहता है, जिसे हम कविता के भीतर मौजूद जीवन के संगीत के माध्यम से पकड़ते हैं।

इसलिए काव्यानुवादक का प्राथमिक गुण काव्य-ध्वनि का प्रभावी विश्लेषण एवं आत्मसातीकरण है। विश्लेषण एवं आत्मसातीकरण की प्रक्रिया अपने मूल में ही द्वंद्वात्मक है। "अनुवादक Text को मात्र Decode ही नहीं उसे Recode भी करता है यानी Text का निर्माण करता है। इसलिए अनुवाद मात्र अनुकरण नहीं जिसका एक ही correct reading होता है। परंतु अनुवाद सृजन भी नहीं। अनुवादक तो कृति के अनुरूप सृजन करता है मगर कृति में निहित विचारों को मात्र प्रस्तुत नहीं करता, उसको रूपांतरित करता है। अनुवादक एक प्रकार का स्रष्टा है जो लेखक के यथार्थ के सम्मुख अपने को समर्पित करता है।"[2]

कृति की सर्जना करते समय प्रत्येक संवेदनशील साहित्यकार एक विशिष्ट संवेदनशीलता, आत्मानुभूति एवं लोकोत्तर भावभूमि में पहुँचता है। यदि अनुवादक साहित्यकार की उस भावभूमि तक पहुँचने में अक्षम हो तो उसका अनुवाद एकदम सतही और निष्प्रभावी बनकर रह जाएगा।

---

[1] *अनुवाद* पत्रिका, शतक विशेषांक, पृ.8

[2] वही, पृ.7

काव्यानुवाद के दौरान स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा के ऐतिहासिक विकास एवं संस्कृति के बीच का अंतर बहुत बड़ी कठिनाई के रूप में सामने आता है। "हर भाषा के कुछ संदर्भ और प्रसंग होते हैं। प्रसंग स्थानिक और देश काल से जुड़कर भाषा की धरातलीय संरचना में घर किए रहते हैं और दूसरी ओर संस्कृति से प्रभावित भाषा की आभ्यंतरिक संरचना में नाना ऐतिहासिक संदर्भ मौजूद रहते हैं। प्रसंग का संबंध भाषा के लाक्षणिक तथा व्यंजनात्मक रूप एवं उससे जुड़े स्थानिक देश काल से होता है और संदर्भ का संबंध भाषा में निहित गहरे सांस्कृतिक संदर्भों से होता है।"[1] इसीलिए अनुवादक के सामने ऐसी स्थिति में बेचारगी सी आ जाती है।[2] यहाँ अनुवादक कृति के पाठक पर पड़े प्रभाव के आधार पर समरूप प्रभावों की नवसर्जना की ओर प्रवृत्त होता है। फिर भी विभिन्न सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं स्थानीय स्थितियों में उत्पादित होने के कारण अनूदित रचना के प्रति लक्ष्य भाषा के अनुवादक-पाठक की आभ्यंतरिक प्रतिक्रिया ठीक वैसी ही नहीं रह पाती, जैसी मूल रचना के प्रति स्रोत भाषा के रचनाकार-पाठक की होती है। यहाँ तक कि एक ही भाषा के विभिन्न पाठकों की आभ्यंतरिक प्रतिक्रिया भी एक नहीं होती।

रचनाकार कविता में भाषा की समाहार शक्ति के माध्यम से अपनी संस्कृति का अपचयन करता है। इस प्रकार कविता अपने संप्रेषित रूप में एक सांस्कृतिक इकाई का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। कविता के बारे में एक सामान्य एवं सार्वभौमिक धारणा यह है कि वह सामान्य से हटकर असाधारण अभिव्यक्ति होती है। सामान्य से सामान्य काव्योक्ति में भी असाधारण की उपस्थिति का कोई न कोई प्रयत्न अवश्य होता है; या तो 'वस्तु विधान' के माध्यम से अथवा 'शिल्पगत् चमत्कार' के माध्यम से। इस असाधारण का एक हिस्सा अपने आस-पास के सांस्कृतिक परिवेश में अवश्य डूबा रहता है। और अनुवाद को सांस्कृतिक सेतु के रूप में कितना भी प्रशंसित एवं विज्ञापित किया जाए, लेकिन संस्कृतियों के बीच की खाई पाटने के क्रम में अनुवादक द्वारा की गई मशक्कत को सिर्फ अनुवादक ही बता सकता है। इससे भी अधिक दुखद पहलू यह है कि इतनी मशक्कत के बाद अनुवादकों को जो खिताब मिलते हैं, वे हैं– घुसपैठिया, परजीवी और अंततः धोखेबाज-वंचक-गद्दार।[3]

---

[1] वही, पृ.3–4

[2] अनुवादकों को ऐसी स्थिति में पाद टिप्पणी का सहारा लेते बहुतायत देखा जा सकता है।

[3] एक इतालवी लोकोक्ति में तो मान ही लिया गया है कि – 'अनुवादक वंचक होता है।' 'त्रादुत्तोर त्रादुत्तोरे।'

अर्थविन्यास एवं सांस्कृतिक स्थितियों से निपटने के पश्चात् काव्यानुवादकों को जिस तीसरी प्रमुख समस्या से दो-चार होना पड़ता है, वह है– काव्यगत संगीत का पुनर्निर्माण, जिसमें एक ओर बाह्य संगीत के उपकरण लय, छंद, अलंकार आदि होते हैं तो दूसरी ओर आंतरिक संगीत के उपकरण नाद सौंदर्य, तन्मयता आदि।

यदि आंतरिक संगीत की समस्या को कुछ समय के लिए टाल भी दिया जाए तो बाह्य संगीत का अनूदित कृति में संरक्षण अपने आप में बड़ी समस्या है। विविध विद्वानों एवं अनुवादकों में इस बात को लेकर अत्यधिक मतभेद है कि कविता के बाह्य संगीत का संरक्षण और उसकी पुनर्रचना अनूदित कृति में किस प्रकार संभव है? "काव्यानुवाद में अलंकारों का अनुवाद कठिन है। छंदों की स्थिति भी जटिल होती है। एडनो सेंट विसेंट मिले ने बॉदलेयर का अनुवाद उसी काव्य छंद में किया है। उनका कहना था कि अनुवाद में वही छंद, लय और संगीत होना जरूरी है। डारोथी लेयर्स ने भी दांते के अनुवाद में उसी टेरजा राइस का प्रयोग किया है, मगर जॉन सियार्डो की धारणा अलग थी। दांते का अनुवाद करते हुए उन्होंने कहा कि इतालवी छंद अंग्रेजी में नहीं चल सकता। बच्चन ने *मैकबेथ* और *ऑथेलो* का अनुवाद हिंदी की प्रकृति के अनुसार रोला छंद में किया। यहाँ सवाल उठता है कि क्या कविता का अनुवाद गद्य में हो सकता है? मैथ्यू आर्नल्ड का विचार था कि कविता का अनुवाद गद्य में हो सकता है। कार्लाइल तथा लीहंट पद्य का अनुवाद पद्य में ही चाहते हैं। टाइटलर का कहना है कि अनेक कविताओं की मुख्य विशेषता उनकी संगीतात्मकता और लय होती है और इन विशेषताओं को गद्य में नहीं लाया जा सकता।"[1]

वस्तुतः कविता में कल्पना, रस-योजना, छंद-योजना, अलंकार, बिंब-विधान, माधुर्य और लय का परिपाक होता है। गद्य में अनुवाद करने पर मूल रचना की इन विशेषताओं के नष्ट हो जाने का खतरा बना रहता है। यदि अनुवाद इन विशेषताओं के परिचालन में असमर्थ हो जाए तो उसकी प्रासंगिकता, सार्थकता के साथ गुणवत्ता पर भी प्रश्न चिह्न लगते देर नहीं लगेगी।

किंतु कविता का बाह्य संगीत ही उसका सर्वस्व नहीं है। उसका आंतरिक संगीत ही अंततः उसे सार्थक काव्यमयता प्रदान करता है। भाव या विचार की आंतरिक आबद्धता अर्थ से भी परे जिस प्रतीयमान प्रतीति को स्पष्ट करती है वह

---

[1] *अनुवाद* पत्रिका, शतक विशेषांक, पृ.10

उसका रूपाकार आंतरिक संगीत है। एक श्रेष्ठ काव्यानुवादक बनने के लिए आवश्यक है कि अनुवादक अनूदित कृति में मूल कृति के आंतरिक संगीत के समरूप आंतरिक संगीत को प्रवाहित करे। इस प्रक्रिया में अनुवादक को एक मायने में पुनर्सर्जना ही करनी पड़ती है।

यह तो निश्चित है कि प्रत्येक मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को इस आंतरिक संगीत की कुछ न कुछ प्रतीति अवश्य होती है, किंतु क्या हर कोई अपनी उस प्रतीति का पुनर्सृजन कर उसे रागात्मक संगीत में अर्थवत्ता प्रदान करते हुए रूपाकार कर सकता है? इसीलिए "विशिष्ट सर्जनात्मक प्रतिभा से समन्वित मनीषी साहित्यकार ही अनुवाद के क्षेत्र में सफलता की आशा कर सकता है, अनुवाद को कला और सर्जना के साँचे में ढाल सकता है।"[1]

काव्यानुवाद में इतने सारे जोखिमों को देखते हुए कई बार तो इसे सिरफिरों का काम मान लिया जाता है। हम्बोल्ट का यह कहना अनायास नहीं है कि– "सारा अनुवाद कार्य असंभव को संभव बनाने का प्रयास है।"[2]

सांस्कृतिक अंतर के परिप्रेक्ष्य में *लाइट ऑफ एशिया* और *बुद्धचरित*

अकसर अनूदित कृतियों को सांस्कृतिक सेतु के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। *लाइट ऑफ एशिया* के हिंदी अनुवाद *बुद्धचरित* का अध्ययन इस मामले में अत्यंत रोचक है।

लाइट ऑफ एशिया के चरित नायक की संस्कृति और रचनाकार एडविन अर्नाल्ड की संस्कृति में दूर देश का अंतर है। यद्यपि अर्नाल्ड की गणना अपने समय के विशिष्ट प्राच्यविदों एवं संस्कृतज्ञों में की जाती है और उन्होंने भारतीय संस्कृति के आलोक में कुछ अन्य काव्य ग्रंथों का प्रणयन भी किया, तथापि किसी भिन्न संस्कृति से संबंध रखनेवाले व्यक्ति के जीवन और विचारों को उसके पूरे सांस्कृतिक कलेवर में उकेर पाना आसान कार्य नहीं है। एडविन अर्नाल्ड के सामने दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या यह थी कि उनके पाठकों को भारतीय संस्कृति का ज्ञान या तो नहीं था और अगर था भी तो अत्यंत अल्प। *लाइट ऑफ एशिया* के वाचन के दौरान पाठक आसानी

---

[1] *अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं अनुप्रयोग* – (सं.) डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ.2

[2] वही, पृ.2

से अर्नाल्ड की इस परेशानी को रेखांकित कर सकता है। एक ओर एडविन का ध्यान अपने चरित नायक की सांस्कृतिक विशिष्टताओं को संरक्षित करने में लगा रहा तो दूसरी ओर वे लगातार इस दिशा में भी प्रयत्नशील रहे कि उनके पाठकों को सांस्कृतिक पार्थक्य की वजह से होनेवाली परेशानियाँ कम से कम हों और वे आसानी से उन विचारों को आत्मसात कर सकें जिनका कवि संप्रेषण करना चाहता है।

दूसरी ओर *लाइट ऑफ एशिया* के हिंदी अनुवादक रामचंद्र शुक्ल के सामने इस तरीके की समस्या नहीं थी। अगर कालावधि के अंतर को छोड़ दिया जाए तो *बुद्धचरित* के पाठकों की संस्कृति काव्य ग्रंथ के चरित नायक की संस्कृति के ऐतिहासिक विकास के क्रम में है।[1] साथ ही, अनुवादक आचार्य शुक्ल भारतीय संस्कृति में रचे-बसे और अपनी संस्कृति के विशिष्ट व्याख्याता भी थे। यही वजह है कि *लाइट ऑफ एशिया* में जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृति अपनी अद्वितीय विशिष्टताओं के साथ आती है, अनुवाद मूल से आगे निकलते हुए अधिक यथार्थ और मर्मस्पर्शी हो जाता है। इसी बात को रेखांकित करते हुए डॉ. विश्वनाथ मिश्र ने लिखा है– "यदि *लाइट ऑफ एशिया* तथा *बुद्धचरित* को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो विदित होगा कि मूल की अपेक्षा अनुवाद सुंदर है। इसका भी कारण है। मूल पुस्तक भारतीय वस्तु के आधार पर एक विदेशी व्यक्ति द्वारा विदेशी भाषा में रची गई है और अनूदित पुस्तक एक भारतीय व्यक्ति द्वारा एक भारतीय भाषा में। मूल पुस्तक का लेखक भारतीय राजनीति, दृश्य आदि से कितना ही परिचित क्यों न हो फिर भी वह अनुवादक के (जो भारतीय है) उक्त वस्तुओं के परिचय की तुलना में नहीं आ सकता। इसी कारण *बुद्धचरित* अपने मूल की अपेक्षा सुंदर है।"[2]

---

[1] वैष्णव परंपरा में बुद्ध विष्णु के तेईसवें अवतार के रूप में वर्णित हैं। वैष्णवों के परमादरणीय ग्रंथ *श्रीमद्भागवत* महापुराण में द्वापर युग में कृष्णावतार के पश्चात् कलियुग के प्रथम चरण में बौद्धावतार वर्णित है –

'भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा
जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान्
शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते।।' – (*श्रीमद्भागवत* 11/4/22)

हिंदू धर्म में कर्मकाण्ड का आरंभ करने से पूर्व कर्ता पूजन आरंभ करने के लिए जो संकल्प लेता है उसमें भगवान विष्णु और अपने युग अर्थात् कलियुग के हो चुके बौद्धावतार को ही समय-साक्षी बनाता है –

'ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु : श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मणोऽहनि द्वितीये परार्धे श्री श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भारतवर्षे भरतखण्डे जम्बूद्वीपे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते बौद्धावतारे..... पूजनमहं करिष्ये।'

[2] *काव्यानुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ* – नगीन चंद सहगल, पृ.29–30 से उद्धृत

एडविन द्वारा *लाइट ऑफ एशिया* की रचना के तमाम कारणों में से एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि वे अपने यूरोपीय पाठकों को एशिया महाद्वीप की इस महान् विभूति और उसके विचारों के बारे में अवगत कराना चाहते थे। इस वजह से उन्होंने अपने काव्यग्रंथ का शीर्षक *लाइट ऑफ एशिया* रखा। शुक्ल जी ने इस शीर्षक को प्रभाव साम्य के आधार पर अनूदित करते हुए अपने अनूदित ग्रंथ का नाम *बुद्धचरित* रखा। रामचरित और कृष्णचरित की परंपरा में यह नामकरण सर्वथा उपयुक्त था। इस नामकरण के द्वारा शुक्ल जी ने बुद्ध के महामानव और अवतारी स्वरूप को भी प्रतिष्ठित किया।

बुद्धचरित को एक अनूदित कृति के रूप में देखते हुए भोलानाथ तिवारी ने इस शीर्षक से असहमति जतायी है। उनके अनुसार– "आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने *लाइट ऑफ एशिया* का अनुवाद *बुद्धचरित* तथा *रिडिल ऑफ यूनीवर्स* का *विश्व प्रपंच* नाम से किया है। उनका अनुवाद जितना अच्छा बन पड़ा है, नामों के शीर्षक कदाचित् उतने ही खराब हैं। 'एशिया ज्योति' तथा 'विश्व की पहेली' शायद अच्छे नाम होते।"[1]

एक अनूदित ग्रंथ होने की विवशता और *लाइट ऑफ एशिया* शीर्षक के शाब्दिक अनुवाद को ध्यान में रखते हुए भोलानाथ तिवारी से सहमत हुआ जा सकता है, किंतु एडविन अर्नाल्ड की काव्यकृति का पूरा शीर्षक सिर्फ *लाइट ऑफ एशिया* नहीं है, बल्कि यह उनके पूरे शीर्षक की पहली पंक्ति है। इस काव्यकृति का पूरा शीर्षक इस प्रकार है–

THE

LIGHT OF ASIA

OR

THE GREAT RENUNCIATION

(MAHABHINISHKRAMANA)

इसी के ठीक नीचे काव्यकृति की अंतःवस्तु के बारे में भी कुछ पंक्तियाँ दी गई हैं, जो इस प्रकार हैं –

BRING

THE LIFE AND TEACHING OF GAUTAMA

PRINCE OF INDIA AND FOUNDER OF BUDDISM

(As Told in verse by an Indian Buddhist)

---

[1] *अनुवाद विज्ञान* – भोलानाथ तिवारी, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 1972, पृ163

पहली बात तो यह कि भारतवर्ष के संदर्भ में 'एशिया ज्योति' का अपने आप में कोई तात्पर्य नहीं है। जहाँ एडविन अपने पाठकों को पश्चिम के लिए एक सीमा तक अपरिचित अपने काव्य नायक गौतम बुद्ध से परिचित कराना चाहते थे, वहीं शुक्ल जी का ध्यान अपने पाठकों में आत्मगौरव की भावना उद्दीप्त करने पर था। उनके पाठकों के लिए बुद्ध कोई नया परिचय नहीं हैं। दूसरे के घर की बात अपने घर और अपने घर की बात अपने घर में बताने के बीच जो अंतर है, कुछ वैसा ही अंतर *लाइट ऑफ एशिया* और *बुद्धचरित* में है।

दूसरी बात यह कि एडविन के पूरे शीर्षक को *बुद्धचरित* शीर्षक आत्मसात कर लेता है। भारतीय सांस्कृतिक-साहित्यिक परंपरा में 'रामचरितमानस' का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृतियों में से है। इस कृति में राम के जीवन और उनके विचारों का सन्निवेश है। भारतीय परंपरा में चरित काव्यों की भरमार रही है। *बुद्धचरित* अपने आप को इस चरित काव्य परंपरा से जोड़ने के साथ-साथ अर्नाल्ड के मंतव्य को भी आत्मसात करता है। अगर अर्नाल्ड द्वारा दिए गए पूरे शीर्षक को ध्यान में रखें तो हिंदी में *बुद्धचरित* ही बेहतर समतुल्य नजर आता है, 'एशिया ज्योति' नहीं। प्रभाव साम्य के आधार पर भी 'एशिया ज्योति' शीर्षक खरा नहीं उतरता।

अनुवाद के दौरान शुक्ल जी का पूरा प्रयत्न यह रहा है कि एक अनूदित कृति होने के बावजूद *बुद्धचरित* का ग्रहण मौलिक कृति के रूप में हो। यह शीर्षक शुक्ल जी के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। आगे की चर्चाओं से यह स्पष्ट हो जाएगा कि किस प्रकार *बुद्धचरित* ही एडविन द्वारा दिए गए शीर्षक का सर्वाधिक प्रभावशाली समतुल्य है।

लाइट ऑफ एशिया की रचना के दौरान एडविन अर्नाल्ड ने इस बात का बराबर ख्याल रखा है कि वे भारतीय संस्कृति में पले-बढ़े और उसे प्रभावित करनेवाले व्यक्तित्व का बखान कर रहे हैं। इस बात के आलोक में एडविन ऐसे परिवेश का निर्माण करने में प्रवृत्त होते हैं जो भारतीय हो।

आषाढ़ का एक दिन में मोहन राकेश ने महान् कवि कालिदास के जीवन को आधार बनाया है। तत्कालीन परिवेश को अपनी नाट्य रचना में जीवंत करने के लिए मोहन राकेश ने तत्समबहुल हिंदी का प्रयोग किया। यद्यपि जिस खड़ी बोली हिंदी में राकेश जी ने उक्त नाटक की रचना की वह उनके नायक के समय की भाषा नहीं थी,

तथापि नाटक की संस्कृतबहुल भाषा से दर्शकों/पाठकों में उस समय के परिवेश का नाटकीय संस्पर्श बना रहता है। यह एक प्रकार का सांस्कृतिक सहचरण है।

लाइट ऑफ एशिया में अर्नाल्ड ने भी सांस्कृतिक सहचरण की पद्धति अपनायी है। *लाइट ऑफ एशिया* में भारतीय (हिंदी, संस्कृत, पालि) शब्द भरे पड़े हैं। Devas, Swastika, Tilka, Maharaj, Chandra, Chaitra, Rohini, Lota, Soma, Kama, Kalpa, Mahakalpa, Wasant, Mlech, Brahm, Nirvana आदि कुछ ऐसे ही शब्द हैं। इन सबके बावजूद जहाँ-जहाँ एडविन को ऐसा लगा कि भारतीय परिवेश संभवतः पूरी तरह से उभर कर नहीं आ पा रहा है, उन्होंने अपने पाठकों पर अतिरिक्त दबाव डाला है। वे भारतीय शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ इण्डियन गर्ल्स, इण्डियन होम, ग्रे हेयर्ड सेंट, गर्ल्स ऑफ प्लेन, डार्क आइड डॉटर, ब्राउन कलर ब्यूटी आदि पदों का भी प्रयोग करते हैं।

इन अतिरिक्त दबावों की वजह से यह साफ लगने लगता है कि कोई व्यक्ति किसी दूर देश की कथा कह रहा है। शुक्ल जी के सामने ऐसी कोई विवशता नहीं थी कि वे परिवेश निर्माण हेतु कोई अतिरिक्त श्रम करते। इसीलिए पूरे अनुवाद में 'इंडियन' के लिए हिंदी शब्द 'भारतीय' नदारद है। इसी से जुड़ी एक रोचक बात यह है कि ऐसे शब्दों के प्रयोग के बाद जब-जब एडविन को पाठकों द्वारा इन शब्दों को न समझ पाने का आभाष हुआ वे शब्द का अर्थ समझाने में फँस गए, जबकि शुक्ल जी के पास ऐसी जगहों पर फँसने के लिए कुछ नहीं था।

इससे भी अधिक एडविन के लिए परेशानी का सबब है– भारतीय लोकजीवन की अभिव्यक्ति। भारतीय परिवेश को सफलता से उकेरने के लिए भारतीय लोक जीवन की अभिव्यक्ति आवश्यक है। इस दिशा में एडविन अर्नाल्ड का प्रयास अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने मेलों, उत्सवों, राज-दरबार, प्राकृतिक सौंदर्य, स्त्री-पुरुष तथा राजा-प्रजा के संबंध, घरेलू स्थितियों, समारोह आदि का व्यंजनात्मक वर्णन किया है। फिर भी किसी व्यक्ति द्वारा अपनी संस्कृति और भौगोलिक सीमा से बहुत दूर किसी देश के लोक जीवन को समझना और उसे प्रस्तुत कर पाना कठिन कार्य है। और एडविन से गलतियाँ हुईं; एक-दो नहीं ढेर सारी गलतियाँ। अपने अनुवाद के दौरान शुक्ल जी की सतर्क एवं पारखी दृष्टि इन गलतियों पर सतत रही और उन्होंने इन सबका यथासंभव निदान एवं परिष्कार किया। एडविन द्वारा इस दिशा में की गई गलतियाँ और शुक्ल जी द्वारा किए गए उनके परिष्कार का वर्णन यहाँ अपेक्षित है।

एडविन ने सिद्धार्थ और यशोधरा के प्रथम मिलन में सिद्धार्थ द्वारा यशोधरा के लिए 'sister' संबोधन कराया है और उसी उत्सव में सिद्धार्थ ने उपहारस्वरूप अपने गले का हार यशोधरा की कमर में पहना दिया है।[1] शुक्ल जी ने इस गलती को दूर करते हुए गले का हार गले में ही पहनवाया है।[2]

'ऋषि' शब्द को समझाने के लिए एडविन को 'A grey-haired saint' की उपमा देनी पड़ी है।[3]

सिद्धार्थ की शिक्षा के दौरान एडविन ने उनसे सभी देशों की सभी भाषाएँ लिखा डाली हैं[4], जबकि सांस्कृतिक सीमाओं को समझते हुए शुक्ल जी ने उस समय प्रचलित या प्रचलित मानी जानेवाली भाषाओं को ही सिद्धार्थ द्वारा लिखाया है।[5]

मृत्यु के दृश्य में एडविन ने शव ले जानेवालों के मुख से "O Rama, Rama, hear!/ Call upon Rama, brothers;" [6] कहलाया है, जबकि शुक्ल जी ने समाज में प्रचलित वाक्य-- " 'राम नाम है सत्य' सबै हैं रहि रहि टेरत;"[7] लिखा है। इसी प्रकरण में "knit of four poles with bomboos interlaced"[8] से यह मंतव्य नहीं निकलता जो सिर्फ एक शब्द 'अर्थी'[9] से साकार होता है।

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् जब सिद्धार्थ अपने गृह नगर में आते हैं तब प्रेम विह्वल यशोधरा के मुख से एडविन ने सिद्धार्थ के नाम का उच्चारण कराया है।[10] भारतीय परंपरा में मर्यादा में बँधी स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेतीं। इसीलिए शुक्ल जी ने पति के नामोच्चारण को छोड़ दिया है।[11] सिद्धार्थ और यशोधरा के प्रथम मिलन के समय यशोधरा के सौंदर्य वर्णन में एडविन ने उसकी चाल की तुलना पार्वती से की है।[12] भारतीय परंपरा में पार्वती को जगत-जननी मानते हुए उनके सौंदर्य

---

1 *Light of Asia* - Sir Edwin Arnold, Kegan Paul, Trench, Trubner & Co. Ltd., London, 1948, p.19
2 *बुद्धचरित* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, सं. 2042 वि., पृ.18
3 *Light of Asia*, p.5
4 *Light of Asia*, p.7
5 *बुद्धचरित*, पृ.7
6 *Light of Asia*, p.49
7 *बुद्धचरित*, पृ.48
8 *Light of Asia*, p.49
9 *बुद्धचरित*, पृ.48
10 *Light of Asia*, p.127
11 *बुद्धचरित*, पृ.125
12 *Light of Asia*, p.19

वर्णन एवं उन्हें नायिका का प्रतिमान बनाने से परहेज किया जाता रहा है। शुक्ल जी ने मर्यादावादी दृष्टि का पालन करते हुए यशोधरा के सौंदर्य की तुलना स्वर्ग की अप्सरा से की है।[1]

एडविन ने Fire, Round जैसे शब्दों का उपयोग क्रमशः पंचाग्नि, प्रदिक्षणा के अर्थ में किया है, किंतु अंग्रेजी के इन शब्दों से वही अर्थ नहीं निकलते जो इन हिंदी शब्दों के वास्तव में हैं। किसी योगी की योग-मुद्रा को 'silent meditation' और 'motionless' से उतना विशद रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता जितना 'अखंड समाधि' से।

जब कुमार सिद्धार्थ पहली बार महल से बाहर जाकर 'दूसरी दुनिया' देखने की इच्छा व्यक्त करते हैं तब उनके लिए जो रथ तैयार किया गया उसमें एडविन 'yoke' को जोतते हैं।[2] इस सांस्कृतिक त्रुटि[5] को दूर करते हुए शुक्ल जी के रथ में– "चपल धवल तुरंग की जोड़ी नधी...।"[3] एडविन ने समय के विशाल पौराणिक मात्रकों कल्प एवं महाकल्प का प्रयोग तो कर लिया है, किंतु फिर इन शब्दों को पाठकों को समझाने के क्रम में कथा क्रम में थोड़ी बाधा उत्पन्न होती है।

सिद्धार्थ की शिक्षा के क्रम में एडविन ने उनके द्वारा गायत्री मंत्र लिखाया है। यहाँ पर जो गायत्री मंत्र उद्धृत किया गया है, वह अधूरा है।[4] शुक्ल जी ने अपने अनुवाद में गायत्री मंत्र की सूचना मात्र दी है।[5]

इसी क्रम में एक रोचक बात आ जाती है। एडविन और शुक्ल जी दोनों ने अपनी-अपनी कृतियों के सातवें सर्ग में दो पालि भाषा के श्लोकों को उद्धृत करते हुए उनका अनुवाद क्रमशः अंग्रेजी और ब्रजभाषा में किया है। इसमें रोचक यह है कि शुक्ल जी ने यहाँ पर मूल अंग्रेजी वाले अनुवाद का अनुवाद न कर उद्धृत पालि भाषा के श्लोकों को मूल मानते हुए उन्हीं का अनुवाद किया है। यहाँ पर दोनों (कृतिकार और अनुवादक) अनुवादक की भूमिका में हैं।

ये सारे उदाहरण सांस्कृतिक स्थितियों की कुछ बानगियाँ भर हैं।

---

1 बुद्धचरित, पृ.18
2 *Light of Asia*, p.37
3 *बुद्धचरित*, पृ.37
4 *Light of Asia*, p.7
5 *बुद्धचरित*, पृ.7

लाइट ऑफ एशिया में एडविन अर्नाल्ड ने बुद्ध के जीवन के साथ उनके विचारों का भी गायन किया है। बुद्ध के विचार आज बौद्ध दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली के रूप में मिलते हैं। इन पारिभाषिक शब्दों में से जितने अंग्रेजी में संभव थे उन्हें एडविन ने बिना पारिभाषिक शब्दों के ही लिखा है, किंतु जिन शब्दों के लिए ऐसा करना संभव नहीं हो सका उन्हें एडविन ने उन्हीं मूल रूपों में रखा है जो बौद्ध परंपरा से प्राप्त होते हैं। Nirvana, Dasa Sil, Iddhi, Mudra, Upeksha, Aswa Ratna, Paramanus, Parasukshma, Trasrenu, Angana, Trishna, Raga, Attavada, Visikitcha, Kama, Silabat - Paramasa, Patigna, Rupraga, Aruparaga, Uddhachcha, Avidya, Samma - Sambuddh, Abhidjna आदि कुछ ऐसे ही पारिभाषिक शब्द हैं, जिन्हें एडविन ने प्रचलित बौद्ध शब्दावली से ज्यों का त्यों अपना लिया है। एडविन भली-भाँति समझ सकते थे कि इन शब्दों को समझने में उनके पाठकों को परेशानी होगी। इस परेशानी को दूर करने के एडविन के प्रयास को *लाइट ऑफ एशिया* में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है। दूसरी ओर, शुक्ल जी बड़े आराम से इन पारिभाषिक शब्दों को अपनी काव्य पंक्तियों में पिरोते चलते हैं; ये बात और है कि इन शब्दों के प्रयोग और विचारधारा के रेखांकन में एडविन अर्नाल्ड और रामचंद्र शुक्ल दोनों से त्रुटियाँ हुई हैं, जिनकी चर्चा हम आगे विचारधारा के विमर्श में करेंगे।

वस्तुतः एक मायने में *बुद्धचरित* अनुवाद के उद्देश्यों का अतिक्रमण कर जाता है। इसमें न तो किसी दूसरी संस्कृति और उसके विचारों को समझने की चाह है और न ही दूसरी भाषा की काव्य प्रणाली को अपनी भाषा की काव्य प्रणाली के बरक्स देखने की चिंता। एक बार फिर से यदि हम इस बात को दुहराएँ कि अनुवाद संस्कृतियों के लिए सेतु का कार्य करता है तो हम पाएँगे कि *लाइट ऑफ एशिया* बनाम *बुद्धचरित* में मामला उलट गया है। इस प्रकरण में सांस्कृतिक सेतु का कार्य एडविन अर्नाल्ड अपनी काव्यकृति *लाइट ऑफ एशिया* के माध्यम से कर रहे हैं, न कि रामचंद्र शुक्ल। शुक्ल जी के लिए इस कृति का मूल्य स्वदेशवासियों के मन में आत्मगौरव का भाव है।

लाइट ऑफ एशिया तथा *बुद्धचरित* में वस्तु और शिल्प की समानताएँ एवं अन्तर

लाइट ऑफ एशिया में महात्मा बुद्ध का जीवन और उनके विचार वर्णित हैं। *बुद्धचरित* की कथावस्तु इससे पृथक नहीं है।

लाइट ऑफ एशिया का आरंभ बुद्ध के जन्म के कारण और महात्म्य से होता है। जन्म, युवावस्था, विरक्ति, गृहत्याग, साधना, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, निर्वाण, परिनिर्वाण जैसे विविध चरणों के द्वारा कथा का परिपाक होता है। कथा के बीच-बीच में बुद्ध से पूछे गए प्रश्नों और बुद्ध द्वारा दिए गए उनके उत्तरों के माध्यम से कथा विविध दिशाओं एवं विमर्शों को भी अपने में समेटती चलती है। काव्यकृति में बीच-बीच में जातक कथाओं का भी निर्वाह किया गया है। ऐसा माना जाता है कि बुद्ध के रूप में आने से पूर्व बुद्ध ने नाना योनियों और नाना रूपों में कई जन्म ग्रहण किए थे। जातक कथाएँ बुद्ध के उन्हीं पूर्व जन्मों की कथाएँ हैं। इन जातक कथाओं में से कई कथाएँ एडविन ने स्वयं बुद्ध के मुख से ही कहलवाई हैं। *लाइट ऑफ एशिया* के अनुवाद के रूप में *बुद्धचरित* इन वस्तु रूपों से दूर नहीं है।

लाइट ऑफ एशिया की दो विशेषताएँ बहुत ध्यान देने योग्य हैं– (i) पूरी काव्यकृति में परंपरागत भारतीय कथाओं और पुराण कथाओं का व्यापक प्रभाव है और (ii) प्रकृति को मनुष्य के राग-विराग से जोड़ा गया है या यूँ कहें कि *लाइट ऑफ एशिया* में प्रकृति एवं मनुष्य एक दूसरे में प्रतिबिंबित हैं। प्रकृति और मनुष्य के बीच सहचारी संबंध अंग्रेजी साहित्य में एलिजाबेथन युग से ही प्रस्फुटित होने लगा था और स्वच्छंदतावाद के उद्‌भव के साथ ही यह अपने चरम पर पहुँच गया। "वर्ड्सवर्थ ने अपनी कविता 'टिंटर्न ऐब्बि' में प्रकृति को 'धात्री, पथप्रदर्शिका, संरक्षिका तथा अपने संपूर्ण नैतिक अस्तित्व की आत्मा' के रूप में संबोधित किया है।"[1] फिर भी *लाइट ऑफ एशिया* में प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंध के स्वरूप की व्याख्या केवल अंग्रेजी साहित्य के आलोक में नहीं की जा सकती। इस काव्यकृति की कथावस्तु के साथ-साथ यह परस्पर रागात्मक संबंध भी बहुत कुछ भारतीय साहित्य से प्रभावित है।

एडविन अर्नाल्ड ने अपनी कृति में एक भारतीय बौद्ध को सूत्रधार के रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह बौद्ध भिक्षु स्वयं कथावस्तु से अनुपस्थित है, तथापि कथा प्रवचन के माध्यम से पूरी कथा में उपस्थित भी है। एडविन ने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि पूर्वी विचारों को समझने के लिए पूर्वी अंतर्दृष्टि आवश्यक है। खुद उन्हीं के शब्दों में– "I have put my poem into a Buddhist's mouth, because, to appreciate the spirit of Asiatic thoughts, they should be regarded from the oriental point of

---

[1] *पाश्चात्य साहित्य-चिंतन* – निर्मला जैन / कुसुम बाँठिया, पृ.162

view"।[1] यह भारतीय प्रभाव का एक प्रमाण है। दूसरा प्रमाण और भी अधिक प्रभावकारी है। एडविन ने माना है कि उनकी यह काव्यकृति उसी तरह है जिस तरह इसे एक भारतीय बौद्ध ने उन्हें ज्ञेय छंदों में बताया था। अपनी काव्यकृति के शीर्षक के ठीक नीचे कोष्ठक में उन्होंने लिखा– "As told in verse by an Indian Buddhist"। तो क्या *लाइट ऑफ एशिया* स्वयं किसी कृति (हो सकता है वह छप न सकी हो) का अनुवाद है? ऐसा हो सकना असंभव नहीं है, क्योंकि *लाइट ऑफ एशिया* को पढ़ने के दौरान कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक अनूदित कृति हो सकती है।

एक अनूदित कृति होने के बावजूद *बुद्धचरित* इस रूप में मूल कृति से अलग है। *बुद्धचरित* पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है कि कथा लेखक द्वारा ही कही जा रही है, किसी अन्य के मुख से नहीं कहलवाई जा रही है।

एक भारतीय बौद्ध द्वारा बताए जाने के बावजूद, एडविन अर्नाल्ड की खुद की मातृ संस्कृति भी उनकी काव्यकृति में प्रभावी है। साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि कोई व्यक्ति किसी दूर देश की कथा कह रहा है, जबकि *बुद्धचरित* में अनुवादक/रचनाकार की आत्मीयता को स्पष्ट महसूस किया जा सकता है।

अनुवादक के रूप में शुक्ल जी ने मूल कथा में कोई परिवर्तन नहीं किया है। मूल कृति की भाँति *बुद्धचरित* में भी आठ सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में ठीक उतनी ही कथा वर्णित है जितनी कि मूल काव्यकृति में। थोड़ी सी छूट लेते हुए शुक्ल जी ने आठवें सर्ग में बुद्ध के कुशीनगर प्रस्थान, चुंद नामक कर्मकार के यहाँ अस्वस्थ होने और परिनिर्वाण प्राप्त करने तक का वर्णन अवश्य जोड़ा है, जो मूल काव्यकृति में अनुपस्थित है।

शुक्ल जी ने कुछ पात्रों और स्थानों के नाम भी बदले हैं। यथा– मूल में सिद्धार्थ के सारथी का नाम एडविन ने 'Channa' दिया है, जबकि शुक्ल जी ने 'छंदक' लिखा है। इसी प्रकार यशोधरा के स्वयंवर में आए धनुर्धर के रूप में विख्यात वीर का नाम एडविन ने 'devadatta' लिखा है, जबकि शुक्ल जी ने 'नागदत्त'। आठवें सर्ग के आरंभ में एडविन ने जिस 'kohana' नदी के तट से वाराणसी की दूरी पाँच दिन पैदल बताई है, उसका नाम शुक्ल जी ने 'रोहिणी' लिखा है। छठें सर्ग में एडविन ने सुजाता के पति का नाम 'Senani' दिया है, जबकि शुक्ल जी ने 'सेन' लिखा है। इसी सर्ग में

---

[1] *Light of Asia,* Preface, p.x

शुक्ल जी ने प्रेम के देवता के नाम के पर्याय 'कंदर्प' का प्रयोग किया है, जबकि एडविन ने 'kama' नाम लिखा है। यशोधरा स्वयंवर में हुए खड्ग युद्ध में अर्नाल्ड ने नागदत्त, अर्जुन और नंद से क्रमशः छः, सात और नौ अंगुल व्यास के पेड़ कटवाए हैं, जबकि शुक्ल जी ने क्रमशः दस, बारह और पंद्रह अंगुल व्यास के वृक्ष कटवा डाले हैं।

जहाँ तक नाम बदलने का प्रश्न है, एडविन ने 'Kama' को छोड़कर सभी नाम भारतीय प्रचलन के अनुसार गलत दिए हैं, जिन्हें शुक्ल जी ने यथोचित रूप से बदला है। 'Kama' के नाम का दूसरा पर्यायवाची 'कंदर्प' ही रखा गया है। पेड़ों की मोटाई के संबंध में जहाँ एडविन यथार्थपरक हैं, वहीं शुक्ल जी कुछ प्रभावपरक।

एडविन अर्नाल्ड ने *लाइट ऑफ एशिया* में बौद्ध दर्शन के महायान संप्रदाय से 'बोधिसत्व' की अवधारणा को लिया है, हीनयान संप्रदाय के 'अर्हत्' को नहीं। करुणा, प्रेम, जगद्कल्याण, अवतारवाद आदि को प्रमुखता देते हुए शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में भी 'बोधिसत्व' को ही रेखांकित किया है।

क्रमशः वृद्ध, रोगी, मृतक और परिव्राजक इन चार दृश्यों को देखकर सिद्धार्थ को जागतिक प्रपंचों से विरक्ति हुई थी।[1] अर्नाल्ड ने इनमें से अंतिम प्रसंग को छोड़ दिया है। पता नहीं किन परिस्थितियों के वशीभूत होकर शुक्ल जी ने भी मूल कृति की भाँति प्रथम तीन दृश्यों का ही वर्णन किया है, जबकि उन्होंने एडविन द्वारा अन्य स्थानों पर की गई इस प्रकार की भूलों को यथा संभव सुधारा है।

जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं– एडविन अर्नाल्ड ने भारतीय परिदृश्य को उभारने के लिए और बौद्ध दर्शन को स्पष्ट करने के लिए कई भारतीय शब्दों के साथ-साथ बौद्ध दर्शन की शब्दावली में निहित पारिभाषिक शब्दों को भी *लाइट ऑफ एशिया* में प्रयुक्त किया है। शुक्ल जी ने भी *बुद्धचरित* में इन पारिभाषिक शब्दों को ग्रहण करते हुए कई अन्य पारिभाषिक शब्द भी अपनी तरफ से जोड़े हैं। इन पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में एडविन द्वारा कई जगह गलतियाँ हो गई हैं। इस क्रम में सर्वाधिक गलतियाँ 'द्वादशांक चक्र' के वर्णन में हैं। शुक्ल जी ने इन गलतियों को

---

[1] *भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन* – चंद्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1995, पृ.45

सुधारने की कोशिश की है, किंतु वे *बुद्धचरित* में इन गलतियों को पूरी तरह सुधार नहीं पाए हैं। इन गलतियों की विशद चर्चा आगे विचारधारा के विमर्श में की जाएगी।

एडविन अर्नाल्ड ने *लाइट ऑफ एशिया* में पारिभाषिक शब्दों को कथाक्रम में ही समझाया है, किंतु शुक्ल जी को मात्र इतने से ही संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कई जगह पाद टिप्पणी लिखकर पारिभाषिक शब्दों की तथ्यपूर्ण व्याख्याएँ दी हैं। *बुद्धचरित* के 143वें पृष्ठ पर दार्शनिक मत को स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने एक पद अपनी ओर से भी जोड़ दिया है और नीचे पाद टिप्पणी में इसकी चर्चा करते हुए 'अनात्मवाद' और 'पुनर्जन्म' पर टिप्पणी दी है। और तो और, बौद्ध दर्शन को पूरी तरह से स्पष्ट करने के लिए शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* के अष्टम सर्ग में एक परिच्छेद अपनी ओर से भी जोड़ दिया है।

कथावस्तु के समान शुक्ल जी ने *लाइट ऑफ एशिया* के अनुवाद में उसकी बाह्य संरचना में कोई परिवर्तन नहीं किया है। अनुवादक का यह प्रयास होना चाहिए कि अनुवाद में न केवल भाव की वरन् शिल्प की भी यथासंभव रक्षा हो। *लाइट ऑफ एशिया* में संपूर्ण कथा आठ सर्गों में विभाजित है और *बुद्धचरित* भी आठ सर्गों में विभाजित है। किंतु प्रत्येक सर्ग के भीतर शिल्प के स्तर पर शुक्ल जी ने किंचित् परिवर्तन किए हैं। मूल काव्यकृति में सर्ग उपसर्गों के आधार पर विभाजित नहीं है, जबकि शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में प्रत्येक सर्ग को बुद्ध के जीवन के विकास के मुख्य बिंदुओं के रूप में उपसर्गों में विभाजित किया है। शुक्ल जी द्वारा सर्ग और उसके भीतर उपसर्गों का विभाजन निम्नलिखित है–

प्रथम सर्ग : जन्म, शिक्षा।

द्वितीय सर्ग : राजा की चिंता, प्रेम, शस्त्र परीक्षा, विवाह, रंगभवन विहार।

तृतीय सर्ग : उद्‌बोधन।

चतुर्थ सर्ग : महाभिनिष्क्रमण।

पंचम सर्ग : प्रव्रज्या, किसा गोतमी, यज्ञबलिदर्शन।

षष्ठ सर्ग : तपश्चर्य्या, तपश्चर्य्या त्याग,सुजाता, बोधिद्रुम, अभिसंबोधन।

सप्तम सर्ग : कपिलवस्तुगमन।

अष्टम सर्ग : उपदेश, ऊँ अभितायु!, ओं मणिपद्मे हुं, परिनिर्वाण।

शुक्ल जी ने अपने अनुवाद में छंदमयता और गेयता की रक्षा हेतु विशेष प्रयत्न किए हैं। "रामचंद्र शुक्ल ने अर्नाल्ड की उक्त कृति का अनुवाद तुकांत छंदोबद्ध कविता के रूप में किया है, जबकि *लाइट ऑफ एशिया* अतुकांत पर छंदोबद्ध है। मूल रचना में आयम्बिक पेन्टामीटर छंद मुख्यतः प्रयुक्त हुआ है, पर शुक्ल जी ने एक सर्ग में भी कई छंदों का प्रयोग किया है। उन्होंने प्रायः कवित्त और सवैया छंदों को अपनाया है और हिंदी महाकाव्यों की उस प्रणाली का पालन किया है, जिसमें प्रत्येक सर्ग में छंद बदल जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनुवादक ने मूल कृति की छंदमयता की रक्षा की है, पर काव्यरूप और छंद उसने हिंदी काव्य परम्परा से लिये हैं। शुक्ल जी ने कविता के स्थान पर कविता उपलब्ध कराई है और छंद के नियमों का सफलतापूर्वक पालन भी किया है।"[1]

लाइट ऑफ एशिया में मुख्य कथा के साथ-साथ जातक कथाओं का निर्वाह भी किया गया है। इस प्रकार एक मुख्य कथा के साथ कई अन्य कथाएँ भी समानांतर रूप से चलती हैं। ये कथाएँ बहुधा बुद्ध की स्मृति (पूर्व जन्मों की) के रूप में वर्णित हैं। इस तरह काव्यकृति के शिल्प में पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) की आंशिक उपस्थिति को भी स्वीकार किया जा सकता है।

एडविन अर्नाल्ड ने बुद्ध के विचारों की परिभाषिक शब्दावली के अर्थों को कथाक्रम में ही खोला है, उनके लिए अलग से पाद टिप्पणी नहीं दी। साथ ही, एडविन ने उन्हीं पारिभाषिक शब्दों को विशेष रूप से लिया है जिनका अंग्रेजी पर्याय ढूँढ़ना मुश्किल था। जिन पारिभाषिक शब्दों को एडविन अंग्रेजी भाषा में रूपांतरित कर पाए हैं उनके लिए बौद्ध दर्शन के भारत में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों को उन्होंने छोड़ दिया है। दूसरी ओर काव्य में सांप्रदायिक विचारों को प्रश्रय न देने वाले आचार्य शुक्ल ने अनुवाद के दौरान पारिभाषिक शब्दों को विशेष आग्रह के साथ स्वीकार किया है।[2] यही नहीं, इन पारिभाषिक शब्दों को पूरी तरह समझाने के लिए शुक्ल जी ने पाद टिप्पणी का भी जमकर उपयोग किया है।

एडविन और रामचंद्र शुक्ल दोनों ने भावानुकूल चरण भंग किए हैं। शुक्ल जी ने चूँकि तुकान्त पदावली का उपयोग किया है, अतः कहीं-कहीं चरणभंग एवं तुकांत युगल

---

[1] *अनुवाद* पत्रिका, प्रतिष्ठित अनुवादक विशेषांक, अंक : 96–97, जुलाई–दिसंबर, 1998, पृ38

[2] दृष्टव्य – *हिंदी साहित्य का इतिहास* में आचार्य शुक्ल द्वारा की गई सिद्धों, नाथों एवं संत कवियों की आलोचनाएँ।

चरण में प्रतिकूलता की स्थिति आ गई है। साथ ही, कहीं-कहीं मात्राओं को संभालने या भावों को छंद के अनुरूप न ढाल पाने के क्रम में तुकांतता भी भंग हो गई है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

"कौशेय अंशुक चीन के, नव शाल बहु कश्मीर को
मणि पुष्पराग, प्रवाल, मोती सुघर सागर तीर के।"[1]

"रही रीति पै शाक्यगणन में जो न सकै टरि,
बड़े घरन की बरन चहै जो कन्या सुंदरी।"[2]

"मृग, बराह औ बाघ आदि सब वन पशु बैर बिसारि
ठाढ़े जहँ तहँ चकित चाह भरि प्रभु मुख रहे निहारी।"[3]

"भई कंठगत प्राण, सकति नहिं नयनन खोलि,
अन्न बिना मरि रही, कढ़त नहिं मुख सों बोली।"[4]

किंतु *बुद्धचरित* में ऐसे स्थल बहुत कम हैं। इन गलतियों में कुछ तो 'प्रूफ' की गड़बड़ी से भी हो सकती हैं और कुछ को थोड़ा सा परिवर्तन करके आसानी से सुधारा जा सकता है। जैसे– पहले उदाहरण में यदि 'नव शाल बहु कश्मीर को' को पहले लिखकर उसके बाद 'कौशेय अंशुकचीन के' लिखा जाता तो ऐसी गलती न होती।

लाइट ऑफ एशिया में बौद्ध दर्शन एवं *बुद्धचरित* में उसका अनुवाद

लाइट ऑफ एशिया में एडविन अर्नाल्ड ने बुद्ध के जीवन के साथ उनके विचारों का भी समावेश किया है। आचार्य शुक्ल ने अपने अनुवाद में एडविन द्वारा प्रस्तुत बौद्ध दर्शन को लगभग अपरिवर्तनीय ही रखा है। अनुवाद में कुछ बदलाव उन स्थलों पर अवश्य हुए हैं जहाँ अर्नाल्ड ने दार्शनिक विवेचन से संबंधित भूलें की हैं। इन सबके बावजूद *बुद्धचरित* में भी दार्शनिक पदों की व्याख्या से संबंधित गलतियाँ विद्यमान हैं और कुछेक जगह तो अनुवादक एक गलती सुधारते हुए दूसरी गलती कर बैठे हैं।

---

[1] *बुद्धचरित*, पृ.4
[2] वही, पृ.19
[3] वही, पृ.98
[4] वही, पृ.127

बुद्ध-निर्वाण के कुछ सप्ताह बाद ही राजगृह में हुई प्रथम बौद्ध संगीति के लगभग सौ वर्षों के बाद वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति हुई। "इस संगीति में भिक्षुसंघ थेरवाद और महासांघिक इन दो दलों में विभक्त हो गया जो आगे चलकर हीनयान और महायान कहलाये।"[1] *लाइट ऑफ एशिया* में एडविन अर्नाल्ड ने महायानियों द्वारा प्रस्तुत 'बोधिसत्व' की अवधारणा, महाकरुणा, प्रेम, जगत की चिंता एवं उसके कल्याण की भावना, अवतारवाद, बुद्ध की ईश्वर के रूप में स्वीकारोक्ति आदि विचारों को ग्रहण किया है और हीनयानियों द्वारा प्रस्तुत 'अर्हत्' की अवधारणा से दूरी रखी है। *बुद्धचरित* में शुक्ल जी ने एडविन का अनुसरण किया है।

दरअसल महायानियों के बुद्ध और हीनयानियों के बुद्ध में तात्त्विक अंतर है। हीनयानियों का आदर्श 'अर्हत्' है। 'अर्हत्' अर्थात् ऐसा मुक्त जीव जिसने केवल अपनी मुक्ति के लिए स्वयं प्रयास किया और मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् इस जीवन-जगत से उसका कोई कारणात्मक संबंध न रह गया हो। दूसरी ओर 'बोधिसत्व' ऐसा मुक्त जीव है जिसने अपनी मुक्ति के साथ-साथ दूसरे जीवों की मुक्ति के लिए भी प्रयास किया और मुक्ति प्राप्ति के पश्चात् उसका शेष जीवन संपूर्ण रूप से जगत-कल्याण हेतु समर्पित है। यहीं से लोक कल्याण की भावना और महाकरुणा का विकास हुआ– "कलिकलुषकृतानि यानि लोके मयि तानि पतंतु विमुच्यतां हि लोकः (लोक के सारे कलि-कलुषों को मैं अपने ऊपर लेता हूँ , इसलिए कि लोक 'मुक्त' हो सके)।"[2]

किंतु ऐसा नहीं है कि *लाइट ऑफ एशिया* और *बुद्धचरित* में हीनयान के मत बिल्कुल नहीं हैं। 'कर्मवाद' एवं 'क्षणभंगवाद' के माध्यम से इनमें हीनयान के विचारों का भी लघु समावेश है। फिर भी मूल एवं अनुवाद दोनों में महायान मत को ही प्रमुखता दी गई है।

लाइट ऑफ एशिया का आरंभ बुद्ध के अवतार में होने वाले कार्यों और फिर देवों की इस घोषणा– "Buddha will go again to help the world."[3] से होता है। *बुद्धचरित* में शुक्ल जी ने अवतार के हेतु को छोड़ते हुए देवताओं की घोषणा– "जैहैं जग कल्याण हेतु भगवान बुद्ध पुनि"[4] से शुरुआत की है। देवताओं का यह कथन अवतारवाद एवं 'बोधिसत्व' की अवधारणा दोनों को एक साथ प्रकाशित कर देता है।

---

[1] *भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन* – चंद्रधर शर्मा, पृ.46
[2] वही, पृ.60
[3] *Light of Asia*, p.1
[4] *बुद्धचरित*, पृ.1

बुद्ध के बोधिसत्व में व्याप्त महाकरुणा को एडविन एवं शुक्ल जी दोनों ने लगातार उकेरा है।

बुद्ध के जीवन का संपूर्ण दुख के विरुद्ध 'मार्ग' एवं महाकरुणा का विकास है, जिसे सिद्धार्थ ने वृद्ध, रोगी, मृतक से लेकर बलि के लिए जाते पशु तक में महसूस किया था। प्राणियों के दुख को स्वयं में ढूँढ़ते बुद्ध में महाकरुणा का विकास हुआ। इसी महाकरुणा के फलस्वरूप बोधिसत्व के रूप में अपना संपूर्ण जीवन जगत-कल्याण हेतु अर्पित कर देनेवाले बुद्ध का सिद्धार्थ के भीतर से विकास हुआ–

"...I would not let one cry

whom I could save!...." [1]

"होय मोहिं सामर्थ्य बचावन की कुछ जाको

जान देहुँ मैं यौं पुकारिबो विफल न ताको।"[2]

और इसके विस्तार क्षेत्र में सभी मानवेतर जीव भी समाहित हो गए–

"I' were all as good to ease one beast of grief

As sit and watch the sorrows of the world

In yonder caverns with the prists who pray." [3]

"पशुहु की इक पीर हरिबो गुनत हौं मैं आज

योग औ तपसाधना सौं अधिक शुभ को काज।"[4]

यहाँ एडविन में जहाँ आत्मालोचन एवं संसार की आलोचना अधिक है, वहीं शुक्ल जी ने आत्मत्याग को विस्तार दिया है।

संसार में व्याप्त पीड़ा ने सिद्धार्थ को उद्वेलित कर दिया। इस पीड़ा के मूल कारण को खोजते-खोजते सिद्धार्थ को समाज में व्याप्त उस प्रत्येक विचार के प्रति रोष

---

[1] *Light of Asia*, p.52
[2] *बुद्धचरित*, पृ.51
[3] *Light of Asia*, p.80
[4] *बुद्धचरित*, पृ.77

उत्पन्न हुआ जो इन पीड़ाओं को उत्पन्न करने एवं बढ़ाने में कहीं न कहीं से उत्तरदायी थे। उन्होंने संसार के उस प्रत्येक तत्त्व का तार्किक और मार्मिक खंडन किया जो समाज में व्याप्त विषमताबोध के लिए उत्तरदायी था।

यह बात बौद्ध धर्म के उन सबसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से है जिनकी वजह से बौद्ध धर्म इतने व्यापक पैमाने पर स्वीकार किया गया। बुद्ध के समय में मनुष्य जाति को अतार्किक ढंग से बाँटने वाली जाति-व्यवस्था का व्यापक पैमाने पर उदय हो चुका था और मनुष्य जाति के एक बड़े वर्ग को बिना किसी तार्किक आधार के हर उस कार्य के लिए अयोग्य घोषित किया जा चुका था जो तथाकथित रूप से पवित्र, जिम्मेदारी भरे या लाभ के थे। बुद्ध द्वारा इस व्यवस्था का तार्किक खंडन मध्ययुगीन संत कवि कबीर की याद दिलाता है।

"Then the world-honoured spake: "Pity and read
Make all flesh kin. There is no caste in blood,
which runneth of one hue, nor caste in tears,
which tickle salt with all; neither comes man
To birth with tilka-work stamped on the brow,
Nor sacred thread on neck. Who doth right dead
is twice-born, and who doeth ill deeds vile." [1]

"कह्यो जगदाराध्य 'कैसी कहत हौ यह बात?
याचना औ दयानाते जीव सब हैं भ्रात।
वर्णभेद न रक्त में है बहत एकहि रंग;
अश्रु में नहिं जाति, खारो ढरत एकहि ढंग

नाहिं जनमत कोउ दीने तिलक अपने भाल,

---

[1] *Light of Asia*, पृ.93

रहत काँधे पै जनेऊ नाहिं जनमत काल।

करत जो सत्कर्म साँचो सोइ द्विज जग माहिं,

करत जो दुष्कर्म सो है वृषल, संशय नाहिं।"[1]

हो सकता है आचार्य शुक्ल को आलोचक के रूप में कबीर की भाषा और उनके द्वारा सामाजिक विद्रूपताओं के तीव्र खंडन का स्वरूप रुचिकर न लगा हो, किंतु इसे एक अनुवादक की विवशता कह लें या बेहतर अनुवाद का निदर्शन, शुक्ल जी द्वारा पुनर्सर्जित ये पंक्तियाँ कबीर की परंपरा में हैं, उनके प्रिय कवि और महान् कवि तुलसीदास की परम्परा में नहीं।

बुद्ध ने इस व्यवस्था को सामाजिक कर्मकाण्डीय एवं बहुदेववादी व्यवस्था से जोड़कर देखा। उस समय देवताओं को प्रसन्न करने हेतु कर्मकाण्ड के नाम पर अपार पशु धन की बलि चढ़ा दी जाती थी। बुद्ध ने ऐसे देवताओं की उपस्थिति एवं महानता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया जिनकी भूख और प्यास निरीह तथा मूक पशुओं के रक्त से शांत होती हो। और पशुओं का रक्त तो खैर बह जाता है, किंतु उस मांस का क्या होता है जो शेष रह जाता है?

" For which of all the great and lesser gods

Have power or pity? who hath seen them - who?

What have they wrought to help their worshippers?

How hath it steaded man to pray, and pay

Tithes of the corn and oil, to chant the charms,

To slay the shrieking sacrifice, to rear

The Stately fane, to feed the priests, and

Call on Vishnu, Shiva,Surya, who save

none – not the worthiest – from the griefs that teach

Those litanies of flattery and fear"[2]

---

1 *बुद्धचरित*, पृ.89

2 *Light of Asia*, p.62

"हैं अनेकन देव, इनमें कौन सदय समर्थ?
काहु न देख्यो इन्है जो करत सेवा व्यर्थ?
निज उपासक करन की ये करै कौन सहाय?
लोग करि आराधना इनकी रहे का पाय?

करत विविध विधान सौं पूजा अनेक प्रकार,
धरत हैं नैवेद्य बहु, करि मंत्र को उच्चार।
हनत यज्ञन माहिं बलि के हेतु पशु बिललात
औ उठावैं बड़े मंदिर जहँ पुजारी खात।

विष्णु, शिव औ सूर्य्य की कीनी अनेक पुकार
पै भले तें भले को नहिं कियो इन उद्धार,
नहिं बचायो ताप तें वा जो सिखावन हार
ठकुरसोहाती, भयस्तुति के अनेक प्रकार।"[1]

प्रत्येक जीव को असत् स्तुतियों एवं भेदभाव से हटाकर बुद्ध ने सबके लिए धर्म एवं मुक्ति का मार्ग खोल दिया। यह सामाजिक समतलीकरण (Stratification) के लिए एक युगांतकारी घटना थी। इस विमुक्ति की सबसे बड़ी विशेषता थी– आत्मसंबल, आत्मप्रज्ञा एवं आत्मविश्वास पर महान् आत्मनिर्भरता। यह विमुक्ति अपने भीतर का विश्वास खो चुके लोगों के लिए विश्वास-प्रदायिनी शक्ति लेकर आई। जब वे देवता हैं या नहीं– इसी में संदेह है और उनकी पूजास्तुति करनेवाले किसी ने भी उन्हें नहीं देखा तो फिर ऐसी अस्थिर वस्तु के पीछे भागने से क्या फायदा? अतः मेरे भाई! अपने लिए आप ही सहारा बनो– 'आत्मदीपो भव'–

Pray no! the Darkness will not brighter! Ask

---

[1] *बुद्धचरित*, पृ.60

Nought from the silence, for it cannot speak!
Vex not your mournful minds with pious pain!
Ah! Brothers, Sisters! seek
Nought from the helpless gods by gift and hymn,
Nor bribe with blood, nor feed with fruits and cakes;
Within yourselves deliverance must be sought;
Each man his prison makes.

Each hath such lordship as the loftiest ones;"[1]

"बंदना जनि करौ, ह्वैहै कछु न वा तम माहिं;
शून्य सौं कछु याचना जनि करौ, सुनिहै नाहिं।
मरौ जनि पचि और हू सब ताप आप बढ़ाय
क्लेश नाना भाँति के दै व्यर्थ तनहिं तपाय।

चहौ कछु असमर्थ देवन सों न भेट चढ़ाय
स्तवन करि बहु भाँति, बेदिन बीच रक्त बहाय।
आप अंतस माहि खोजौ मुक्ति को तुम द्वार।
तुम बनावत आप अपने हेतु कारागार।

शक्ति तुम्हरे हाथ देवन सौं कछू कम नाहिं।"[2]

यद्यपि शुक्ल जी के अनुवाद में काव्यात्मकता मूल से कम है तथापि मूल भावों को वे बखूबी उकेर ले गए हैं।

---

[1] *Light of Asia,* p.138
[2] *बुद्धचरित,* पृ.136–137

इस अपार दुख संसार में यदि किसी सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता है तो क्या वह ईश्वर इतना निष्ठुर है कि दुख में कलपते जीव का दर्द नहीं देख पा रहा है? नहीं, ईश्वर नहीं है! प्रत्येक मनुष्य को इस दुखरूपी संसार से पार जाने के लिए स्वयं उद्यम करना होगा, कोई ईश्वर उसे बचाने नहीं आएगा।

संसार में व्याप्त अनाचार एवं विषमताबोध पर कुठाराघात करने के पश्चात् बुद्ध ने दुख से मुक्ति पर विचार करना आरंभ किया। धीरे-धीरे उन्होंने जाना कि आज तक व्यक्ति जिन ईश्वर, आत्मा, जगत संबंधी दार्शनिक समस्याओं से उलझा हुआ है, उनका दुख-मुक्ति में कोई योगदान नहीं है। "गौतम बुद्ध का यह मत था कि दुःख से मनुष्य की मुक्ति ईश्वर, आत्मा, जगत संबंधी दार्शनिक समस्याओं में उलझने अथवा इनके विषय में वाद-विवाद करने में नहीं अपितु आचरण की शुद्धता और दुःख-निरोध प्रयास द्वारा ही सम्भव है, अतः उन्होंने सभी दार्शनिक प्रश्नों को 'अव्याकृत'– अर्थात् न पूछे जाने योग्य– कहकर अपने शिष्यों को उनमें न उलझने का उपदेश दिया। ....उनका विचार था कि संसार में जिस दुख की सत्ता निर्विवाद है उससे मुक्ति पाने के लिए प्रयास करने से पूर्व मनुष्य का ऐसे दार्शनिक प्रश्न पूछना उसी प्रकार निरर्थक है, जिस प्रकार तीर से घायल किसी व्यक्ति का यह कहना कि मैं अपने शरीर से इस तीर को तभी निकालने दूँगा, जब मुझे यह बता दिया जाए कि तीर चलानेवाले व्यक्ति की लम्बाई, मोटाई, जाति, आयु आदि क्या थी।"[1]

साथ ही, इन प्रश्नों को शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। शब्दों द्वारा या तो शाश्वतवाद की स्थापना होगी या फिर उच्छेदवाद की, अतः मौन रहना ही श्रेयस्कर है–

"OM, AMITAYA! Measure not with words
Th' Immeasurable; nor sink the string of thought
Into the Fathomless. who asks doth err,
who answers, errs. say nought!"[2]

---

[1] *नीति शास्त्र के मूल सिद्धांत* – वेद प्रकाश वर्मा, अलाईड पब्लिशर्स लिमिटेड, संशोधित एवं परिवर्धित चतुर्थ संस्करण, 1994, पृ.355

[2] *Light of Asia*, p.137

"अप्रमेय को न शब्द बाँधि कै बताइए,

जो अथाह ताहि सौं न बुद्धि सौं थहाइए।

ताहि पूछि औ बताय लोग भूल ही करैं;

सो प्रसंग लाय व्यर्थ वाद माहिं ते परैं।"[1]

बुद्ध ने अपने विचारों के लिए अपने पूर्व ऋषियों (सम्यक् सम्बुद्ध) की स्तुति की है। उन्होंने कहा कि मैंने कोई नई बात नहीं कही है, बल्कि मैं भी उसी बुद्ध परंपरा का एक अंग हूँ, जिन्होंने पूर्व में सत्य का साक्षात्कार कर लिया है–

"Not of a mortal line" the Master said,

"I spake, but of descent invisible,

The Buddhas who have been and who shall be

of these am I, and what they did I do,

And this, which now befalls, so fell before..." [2]

"बोले प्रभु कुल परंपरा मर्त्यन की नाहीं,

पै बुद्धन के अवतारन की जुग जुग माहीं।

पहले हू हैं भए बुद्ध, आगे हू ह्वै हैं;

तिनहीं में से एक हमहुँ, हे तात! कहैहैं।

जो कछु वे करि गए कियो मैंने सोई अब,

जो कछु अब ह्वैं रह्यो भयो पहले हू सो सब।"[3]

"छः वर्षों की कठिन तपस्या एवं साधना के बाद लगभग पैंतीस वर्ष की आयु में गया के समीप बोधिवृक्ष के नीचे मार-विजय करके अज्ञान के अंधकार को दूर करनेवाले ज्ञान-सूर्य का साक्षात्कार करके वे बोधिसंपन्न 'सम्यक् सम्बुद्ध' बने।"[4] धर्म प्रवर्तन के

---

1 *बुद्धचरित,* पृ.135–136

2 *Light of Asia,* p.132

3 *बुद्धचरित,* पृ.130

4 *भारतीय दर्शनः आलोचन और अनुशीलन* – चन्द्रधर शर्मा, पृ.45

अंतर्गत दुख निवारण पर बल देते हुए बुद्ध ने चार आर्य सत्यों का प्रत्याख्यान दिया। "दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुःख-निरोध-मार्ग, ये चार बुद्धोपदिष्ट आर्य सत्य हैं।"[1] एडविन अर्नाल्ड ने दुःख-सत्य के रूप में इनकी व्याख्या के लिए बौद्ध पारिभाषिक शब्दावली की सहायता नहीं ली, बल्कि उनका अंग्रेजी में अनुवाद किया है।[2] शुक्ल जी ने अनुवाद के दौरान उपर्युक्त चारों पारिभाषिक शब्दों का उपयोग किया है।[3]

प्रथम आर्य सत्य के अंतर्गत दुख की व्यापकता की चर्चा करते हुए संसार को दुखमय कहा गया है। द्वितीय आर्य सत्य 'दुःख-समुदय' है। दुख कार्य है और इसका कोई न कोई कारण अवश्य है। बुद्ध कारण-कार्य वाद को सार्वभौमिक एवं सापेक्षिक मानते थे, अर्थात् प्रत्येक कार्य का कोई न कोई सापेक्षिक कारण अवश्य होता है। इस जीवन और मृत्यु के चक्र का जो संसार का सबसे बड़ा दुख है, कोई न कोई कारण अवश्य होगा। बुद्ध ने इसका मूल कारण अविद्या को मानते हुए जीवन चक्र की बारह कड़ियों का उल्लेख किया है। इस चक्र को उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद, द्वादशांक चक्र, धर्म चक्र, कारण-कार्य चक्र, भव चक्र आदि कहा है। ये बारह कड़ियाँ हैं– "(i) अविद्या, (ii) संस्कार, (iii) विज्ञान, (iv) नाम-रूप, (v) षडायतन, (vi) स्पर्श, (vii) वेदना, (viii) तृष्णा, (ix) उपादान, (x) भव, (xi) जाति और (xii) जरा-मरण।"[4]

एडविन अर्नाल्ड ने मूल कृति में और रामचंद्र शुक्ल ने अनुवाद के दौरान द्वादशांक चक्र के विश्लेषण में सैद्धांतिक गलतियाँ की हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि भारतीय संस्कृति के संदर्भ में एडविन से जहाँ भी भूलें हुई हैं, शुक्ल जी ने उन्हें सुधारा है या सुधारने की कोशिश की है, किंतु जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है– इस प्रकरण में पता नहीं क्यों शुक्ल जी एडविन द्वारा की गई सैद्धांतिक गलतियों को दुहरा गए हैं।

एडविन ने षडायतन से वेदना का उद्‌भव लिखा है[5] और शुक्ल जी ने भी यही किया है।[6] जबकि षडायतन से स्पर्श और फिर स्पर्श से वेदना की उत्पत्ति होती है। एडविन द्वारा की गई षडायतन की व्याख्या भी गलत है। एडविन ने षडायतन की

---

1 वही, पृ.48
2 *Light of Asia*, p.147–149
3 *बुद्धचरित*, पृ.145–147
4 *भारतीय दर्शन* – डा. आर. पी. शर्मा; भारती भवन, पटना, पुनर्मुद्रित संस्करण 2003,पृ.49
5 *Light of Asia*, p.110
6 *बुद्धचरित*, पृ.107

जो व्याख्या दी है वह दरअसल स्पर्श की व्याख्या है। षडायतन छः इंद्रियों का उद्‌भव है, उनके द्वारा संवेदनाओं का ग्रहण नहीं; इंद्रियों द्वारा संवेदनाओं का ग्रहण स्पर्श है।[1]

एडविन ने तृष्णा के पश्चात् उपादान, भव, जाति और जरामरण को एक ही व्याख्या में समेट दिया है। यद्यपि उन्होंने उपादान का नाम लिया है किंतु भव और जाति के विश्लेषण के पश्चात् और यह और भी बड़ी गलती है। सांप्रदायिक विचारों के काव्य में प्रयोग के प्रबल विरोधी आचार्य शुक्ल ने बहुत ही अनमने ढंग से इस प्रकरण का शब्दानुवाद कर डाला है। यद्यपि एडविन अर्नाल्ड भी भारतीय संस्कृति के विद्वान थे, तथापि अनुवादक का इस प्रकरण में दोष अधिक है, क्योंकि वह भारतीय संस्कृति का प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ-साथ भारतीय भी है। भारतीय विचारों के प्रति इस प्रकार का व्यतिक्रम या शैथिल्य उसके लिए क्षम्य नहीं है।

हीनयानियों ने 'क्षणभंगवाद' एवं 'अनात्मवाद' को 'प्रतीत्यसमुत्पाद' की अनिवार्य परिणति माना था। उनके अनुसार कारण सत् उत्पन्न होने के साथ ही उसी क्षण में कार्य सत् को जन्म देकर विनष्ट हो जाता है और इस प्रकार कारण की कार्य में सत्ता शेष नहीं रह जाती। यद्यपि एडविन ने अपनी काव्यकृति में मुख्यतः महायानी विचारों का ही अनुकरण किया है, तथापि 'क्षणभंगवाद'[2] एवं 'अनात्मवाद'[3] को *लाइट ऑफ एशिया* में रखकर उन्होंने हीनयानी विचारों को भी गौण रूप से ही सही, किंतु शामिल किया है। शुक्ल जी ने भी एडविन का ही अनुसरण किया है।[4]

बौद्ध दर्शन के तृतीय एवं चतुर्थ आर्य सत्य क्रमशः 'दुःख-निरोध' एवं 'दुःख-निरोध-मार्ग' हैं। कारण के उपस्थित होने पर कार्य भी उपस्थित होगा और कारण को समाप्त कर देने पर कार्य स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। भव चक्र का मूल कारण अविद्या है और इस अविद्या के विनाश से ही जन्म-मरण चक्र रूपी महान् दुख को समाप्त किया जा सकता है। यही बुद्ध का तृतीय आर्य सत्य है। अष्टांगिक मार्ग एवं त्रिरत्न के सम्यक् अनुपालन से जीव भव चक्र से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त करता है। यह चतुर्थ आर्य सत्य है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक्

---

[1] *भारतीय दर्शन* – डॉ. आर.पी. शर्मा पृ.49
[2] *Light of Asia, p.138*
[3] वही, पृ.103
[4] *बुद्धचरित*, पृ.99 और 136

कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि बुद्धोपदिष्ट अष्टांगिक मार्ग हैं तथा शील, समाधि और प्रज्ञा बौद्ध दर्शन के त्रिरत्न हैं।[1]

एडविन अर्नाल्ड ने इस प्रकरण में भी पारिभाषिक शब्दों का उपयोग न कर उनका अंग्रेजी अनुवाद ही रखा है। बीच-बीच में 'Karma', 'Dharma' जैसे पारिभाषिक शब्द अवश्य प्राप्त होते हैं। एडविन ने आरंभिक चार मार्गों की चर्चा व्याख्या सहित की है[2] और शुक्ल जी ने उन्हें ठीक वैसा ही अनूदित कर दिया है[3], किंतु अंतिम चार मार्गों क्रमशः सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि के नाम भर गिना कर एडविन ने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली है।[4] शुक्ल जी ने थोड़ी सी छूट लेते हुए इन चार मार्गों की भी आरंभिक चार मार्गों की ही भाँति काव्य क्रम में व्याख्या दी है।[5]

"बुद्ध ने इस दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् या अष्टांगिक मार्ग को 'मध्यमा प्रतिपद्' या मध्यम मार्ग की संज्ञा दी है। यह भोगविलास और शरीर को अत्यंत क्षीण करनेवाली कठोर तपस्या के बीच का मार्ग है। बुद्ध-वचन है– भिक्षुओं! प्रव्रज्या लेनेवाले को दो अंतों का सेवन नहीं करना चाहिए। कौन से दो अन्त? एक तो कामसुखों में आसक्ति जो हीन है, ग्राम्य है, पृथग्जनोचित है, अनार्य है और अनर्थों की जड़ है और दूसरी आत्मपीड़ा में आसक्ति जो दुःखमय है, अनार्य है और अनर्थों की जड़ है। भिक्षुओं! इन दोनों अंतों को छोड़कर तथागत ने मध्यम मार्ग का साक्षात्कार किया है।"[6]

एडविन ने बुद्ध के 'मध्यमा प्रतिपद्' को *लाइट ऑफ एशिया* में अत्यंत काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है और शुक्ल जी द्वारा उन पंक्तियों के अनुवाद की काव्यात्मकता तो और भी निखर कर सामने आई है–

"Fair goes the dancing when the sitar's tuned;

Tune us the sitar neither low nor high,

And we will dance away the hearts of men.

---

1 *भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन* – चंद्रधर शर्मा, पृ.49–50

2 *Light of Asia, p.150*

3 *बुद्धचरित*, पृ.147–148

4 *Light of Asia*, p.150

5 *बुद्धचरित*, पृ.148

6 *भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन* – चंद्रधर शर्मा, पृ.49–50

Then string O'erstretched breaks, and the music flies;

The string O'erslack is dumb, and music dies;

Tune us the sitar neither low nor high." [1]

"रखौ तुम ठीक बीन को तार।

ना ऊँचो, ना नीचो होवै जमै रंग या बार।

गाय रिझाय करैं अपने बस हम सिगरो संसार।

बहुत कसे टुटि जात तार, त्नय उखरि जाति मँझधार।

ढीलो तार न बोल निकासत, रंग होत सब छार।"[2]

यह माध्यम मार्ग निर्वाण प्रदायक है। निर्वाण अर्थात् जन्म-मरण चक्र से, भव-चक्र से छुटकारा। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ है– बुझना। जैसे तेल के समाप्त होने पर दीया अपने आप बुझ जाता है, उसी प्रकार संचित एवं प्रारब्ध कर्मों के क्षय एवं संचीयमान कर्मों की गति को मध्यम मार्ग के द्वारा रोक कर व्यक्ति इस जन्म-मरण चक्र से छुटकारा पाता है। एडविन अर्नाल्ड ने इस रूपक को अपनी काव्यकृति में निर्वाण का अर्थ बताने के लिए प्रयुक्त किया है और शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में इसका सुंदर अनुवाद किया है।

"This is the doctrine of the KARMA. Learn!

Only when all the dross of sin is quit,

Only when life dies like a white flame spent

Death lies along with it." [3]

"कर्म को सिद्धांत है यह, लेहु याको जानि।

पाप के सब पुंज की ह्वै जाति है जब हानि,

---

1 *Light of Asia,* p.94

2 *बुद्धचरित,* पृ.90

3 *Light of Asia*, p.145

जात जीवन जबै सारो लौ समान बुताय

तबै ताके संग ही यह मृत्यु हू मरि जाय।"[1]

बौद्ध दर्शन अहंकार-ममकार से युक्त प्रमाता की तात्त्विक सत्ता का निषेघ करता है। साथ ही, वह पुनर्जन्म में भी विश्वास करता है। फिर पुनर्जन्म कैसे संभव है? बौद्ध दर्शन के अनुसार इस जन्म का अंतिम कृत कर्म ही पश्चात् जन्म का कारण बनता है। एडविन इसे स्पष्ट नहीं कर पाए हैं। अतः शुक्ल जी ने अनात्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धांत के बीच के संबंध को स्पष्ट करने के लिए एक पद अपनी ओर से भी जोड़ दिया है।[2]

बुद्ध द्वारा ज्ञान प्राप्ति के लिए किए गए प्रयासों के अनुवाद में शुक्ल जी ने एडविन से अलग वर्णनों को भी जोड़ा है। जो रात्रि सभी प्राणियों के लिए मोह-निशा के समान सुलानेवाली है, उसमें योगी सतर्क और जागृत रहता है। *श्रीमद्भगवद्गीता* में भगवान कृष्ण द्वारा दी गई इस उद्भावना को शुक्ल जी ने बुद्ध के योगी रूप से जोड़ा है–

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।"[3]

"छाय जाति पुनि निशा, जीव जग के सब सोवत।

केवल कौशिक रटत कहूँ, कहुँ जंबुक रोवत।

पै प्रभु ध्यान निमग्न रहत हैं आसन धारे,

या जीवन को तत्व कहा सोचत मन मारे।"[4]

शुक्ल जी एडविन अर्नाल्ड द्वारा बौद्ध दर्शन के विषय में दी गई जानकारी से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने बौद्ध दर्शन के दशशील, बोध्यंग, ऋद्धिपाद, पंचबल, अष्टविमोक्षसोपान, सप्तत्रिंशच्छिक्षणमाण आदि विचारों को समझाने के लिए आठवें सर्ग

---

1 *बुद्धचरित,* पृ.143

2 वही, पृ.143

3 *श्रीमद्भगवद्गीता,* (2/69)

4 *बुद्धचरित,* पृ.70

में एक परिच्छेद अपनी ओर से जोड़ा है।[1] साथ ही, इन पारिभाषिक पदों की समुचित व्याख्या के लिए उन्होंने पाद टिप्पणी का सहारा भी लिया है।

लाइट ऑफ एशिया के हिंदी अनुवादक द्वारा ली गई छूटें

ऐसा नहीं है कि *बुद्धचरित, लाइट ऑफ एशिया* का शब्दशः या आँख मूँदकर कर लिया गया अनुवाद है। शुक्ल जी की सतर्क दृष्टि ने प्राप्त सामग्री में चुनाव का कार्य लगातार किया है। जो कुछ सही और अच्छा लगा उसे उन्होंने अनूदित किया, जहाँ कुछ खटका उसमें उन्होंने संशोधन किया और जहाँ कुछ कथाक्रम में अनावश्यक सा प्रतीत हुआ उसे छोड़ देने में भी उन्होंने कोई कोताही नहीं दिखाई। *बुद्धचरित* के वक्तव्य में उन्होंने अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए लिखा– "दृश्य वर्णन जहाँ अयुक्त या अपर्याप्त प्रतीत हुए वहाँ बहुत कुछ फेरफार करना या बढ़ाना भी पड़ा है।"[2]

शुक्ल जी ने इस प्रकार की स्वतंत्रता सबसे अधिक बुद्ध के जीवन से संबंधित वर्णनों में ली है। उन्होंने कई पात्रों के नाम तो बदले ही हैं, राजमहल और प्रकृति वर्णन आदि कई दृश्यों को भी बदलते हुए अपनी मौलिक उद्‌भावना प्रदर्शित की है।[3] इस प्रकार के वर्णनों में से कई जो उन्हें अनुपयुक्त लगे, उनके द्वारा छोड़ भी दिए गए हैं।[4] एडविन अर्नाल्ड ने मूल कृति में बुद्ध के जीवन के अंतिम क्षणों का वर्णन नहीं किया है। शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में सिद्धार्थ के जीवन के अंतिम क्षणों को भी स्थान दिया है।[5] साथ ही, शुक्ल जी ने बुद्ध के जीवन से संबंधित कई अन्य दृश्यों के वर्णनों को भी अपनी ओर से जोड़ा है।[6]

यद्यपि *लाइट ऑफ एशिया* भारतीय जीवन एवं दर्शन पर आधारित काव्यकृति है, तथापि इसके रचनाकार विदेशी भाषा एवं संस्कृति से संबंधित हैं। एडविन अर्नाल्ड ने इस कृति को भारतीय दृष्टि से रखने का यथासंभव प्रयास किया है, किंतु *लाइट ऑफ एशिया* उनके अपने सांस्कृतिक तत्त्वों से अछूती नहीं है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इस कृति के अनुवाद के दौरान शुक्ल जी ने इस बात का लगातार ध्यान रखा है कि अनूदित कृति अपने भाषाई समाज से सीधा संबंध बना सके और किसी भी रूप

---

[1] वही, पृ.152–156
[2] *बुद्धचरित,* वक्तव्य, पृ.1
[3] वही, पृ.64, 80, 97, 100, 118, 130 आदि
[4] वही, पृ.1, 38, 43, 53, 66, 72, 114, 128, 139 आदि
[5] वही, पृ.152, 156
[6] वही, पृ.20, 75, 100, 117 आदि

में इसमें कोई सांस्कृतिक दूरी परिलक्षित न हो। शुक्ल जी ने अपने वक्तव्य में लिखा– "यद्यपि ढंग इसका ऐसा रखा गया है कि एक स्वतंत्र हिंदी काव्य के रूप में इसका ग्रहण हो पर साथ ही मूल पुस्तक के भावों को स्पष्ट करने का भी पूर्ण प्रयत्न किया गया है।"[1]

कई जगह एडविन ने अपने सांस्कृतिक तत्त्वों को आधार बनाकर भारतीय जीवन एवं समाज का वर्णन किया है। शुक्ल जी ने उन तत्त्वों को प्रभाव साम्य के आधार पर भारतीय संस्कृति में ढाला है। इन सबकी विवेचना पहले की जा चुकी है। इसीलिए *बुद्धचरित* कई जगह *लाइट ऑफ एशिया* के भावानुवाद के रूप में हमारे सामने आता है।

अर्नाल्ड ने कई जगह ऐसे अंग्रेजी के अलंकारों का प्रयोग किया है जिनका सीधे-सीधे ब्रजभाषा में रूपांतरण संभव नहीं है। शुक्ल जी ने इस बात की चर्चा अपने वक्तव्य में की है।[2] इस कठिनाई से निजात पाने के लिए उन्होंने ऐसे अलंकारों को खोलकर व्यंजना साम्य के आधार पर ब्रजभाषा में रूपांतरित किया है। इन सबकी चर्चा हम अगले अध्याय में एक अनूदित कृति के रूप में *बुद्धचरित* की काव्य मीमांसा के दौरान करेंगे।

एडविन अर्नाल्ड बौद्ध दर्शन से संबंधित कई तत्त्वों को समुचित रूप से विवेचित नहीं कर पाए हैं। शुक्ल जी ने दार्शनिक तत्त्वों को पूरी तरह से स्पष्ट करने के लिए अपनी तरफ से कुछ पंक्तियाँ जोड़ी हैं।[3] एडविन द्वारा छोड़ दिए गए दार्शनिक तत्त्वों को स्पष्ट करने के लिए शुक्ल जी ने आठवें सर्ग में एक परिच्छेद अपनी ओर से भी जोड़ रखा है। साथ ही, उन्हें और अधिक स्पष्ट करने के लिए पाद टिप्पणी की सहायता भी ली है।[4]

अर्नाल्ड द्वारा प्रस्तुत कुछ वैचारिक विवेचन शुक्ल जी को अनावश्यक प्रतीत हुए अतः उन्होंने या तो इन्हें बदल दिया है[5] अथवा पूरी तरह अनावश्यक या गलत लगने

---

[1] वही, वक्तव्य, पृ.1
[2] वही, वक्तव्य, पृ.1
[3] वही, पृ.70, 104, 143 आदि
[4] वही, पृ.152–156
[5] वही, पृ.137, 148

पर इन्हें छोड़ भी दिया है।[1]

इस विवेचन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि काव्यानुवाद की राह में आनेवाली समस्याओं पर शुक्ल जी ने कुछेक गलतियों, प्रमादों एवं ली गई छूटों के बावजूद स्पृहणीय सफलता प्राप्त की है। इस सफलता को *बुद्धचरित* में काव्य रूप में परिणत करने में उन्होंने किस सीमा तक सफलता प्राप्त की, इसका विवेचन अगले अध्याय में *बुद्धचरित* की काव्य मीमांसा के अंतर्गत किया जाएगा।

[1] वही, पृ.108, 143, 148, 151 आदि

तृतीय अध्याय

बुद्धचरित में अनुवाद का स्वरूप और उसकी मीमांसा

(क) आचार्य शुक्ल की अनुवाद दृष्टि

(ख) *बुद्धचरित* में अभिव्यक्त भाषा : चयन का कारण और उसका स्वरूप

(ग) *बुद्धचरित* में काव्यानुवाद का स्वरूप और उसकी मीमांसा

आचार्य शुक्ल की अनुवाद दृष्टि

यद्यपि शुक्ल जी के लेखन कार्य का एक बड़ा हिस्सा अनुवाद कार्य है, तथापि उन्होंने किसी पुस्तक या किसी पाठ के अंतर्गत अपनी अनुवाद संबंधी धारणाओं का उल्लेख नहीं किया है। इतनी विपुल मात्रा में अनुवाद कार्य करनेवाले अनुवादक के पास अनुवाद दृष्टि अनुपस्थित रही हो, ऐसा मानना संभव नहीं है। आचार्य शुक्ल के अनुवाद कार्यों का अध्ययन करने पर उनमें एक स्पष्ट दृष्टिकोण एवं तारतम्यता का भान होता है। उनकी अनूदित पुस्तकों में लिखित उनके वक्तव्यों में भी उनकी अनुवाद संबंधी धारणाएँ रेखांकित की जा सकती हैं।

आचार्य शुक्ल का कोई भी अनुवाद कार्य अनायास या अकारण नहीं है। उनके प्रत्येक अनुवाद का एक निश्चित उद्देश्य है। अपने उद्देश्य को शुक्ल जी ने अपनी अनूदित कृतियों की भूमिकाओं में प्रकाशित किया है। यद्यपि आचार्य शुक्ल की साहित्य-साधना बहुआयामी थी, तथापि उनके अनुवाद कार्यों में निहित उद्देश्यों पर मुख्यतः द्विविध रूप से विचार किया जा सकता है। पहला– ऐतिहासिक विकास यात्रा में भारतवर्ष के प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना करते हुए स्वदेशवासियों के मन में आत्मगौरव एवं राष्ट्रगौरव का संचार तथा पददलित हीन भावना का निष्कासन और दूसरा– भारत के पिछड़े हुए समाज को दुनिया के नवीनतम ज्ञान-विज्ञान की विविध धाराओं से जोड़ना। इसीलिए शुक्ल जी ने जहाँ एक ओर *लाइट ऑफ एशिया* और *शशांक* का अनुवाद किया तो दूसरी ओर *रिडिल ऑफ यूनीवर्स, माइनर हिंट्स,* 'लिटरेचर' आदि ज्ञान की विविध विधाओं से संबंधित रचनाओं को भी उन्होंने अनूदित किया। भारत के प्राचीन इतिहास को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने न केवल मौलिक लेख ही लिखे, बल्कि अंग्रेजी में प्रस्तुत कई लेखों को अनूदित भी किया।[1] एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित उनकी पहली अनूदित कृति *मेगास्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन* भारत के प्राचीन इतिहास से संबंधित महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

शुक्ल जी के अनुवाद कार्यों में जिस पहली विशिष्टता को परखा जा सकता है वह है– मूल कृति के भावों की रक्षा के साथ उसका लक्ष्य भाषा(हिंदी) की विविधता एवं सीमाओं के साथ संबंध स्थापन। प्रत्येक भाषा अपने विकास के क्रम में उसका प्रयोग करनेवाले समाज की सांस्कृतिक विशिष्टताओं को आत्मसात करती चलती है। यह भाषा

---

[1] *चिंतामणि–4* में आचार्य शुक्ल के इतिहास संबंधी कई मौलिक एवं अनूदित लेख संकलित किए गए हैं।

का वह पक्ष है जिसके कारण साहित्यिक अनुवाद और खासकर काव्यानुवाद को एक दुःसाध्य कार्य समझा जाता है। शुक्ल जी ने अपने अनुवाद कार्यों में सांस्कृतिक सहचरण को लक्ष्य भाषा (हिंदी) के पाठकों के विशिष्ट संदर्भ में देखा। अनूदित कृति में मूल कृति के भावों की संरक्षा तो हो ही, उसका स्वरूप एवं संप्रेषण ऐसा हो कि पाठक अनूदित कृति के साथ सहज रूप से आत्मीय संबंध विकसित कर सकें, इसका ध्यान शुक्ल जी ने बराबर रखा है।

जैसा कि टी. एस. एलियट ने कहा था– "कविता का पाठक कविता को केवल समझना ही नहीं चाहता, बल्कि उसका आस्वाद भी करना चाहता है।"[1] अनुवाद कार्य के दौरान शुक्ल जी ने आस्वादन प्रक्रिया को यथा संभव अक्षत रूप में पुनर्जीवन देने का प्रयास किया है। *बुद्धचरित* की काव्यमयता और *शशांक* का सांस्कृतिक संरचनात्मक तनाव इस बात के जीवंत उदाहरण हैं। आस्वादन प्रक्रिया की पुनर्सर्जना के दौरान भी शुक्ल जी ने लक्ष्य भाषा के पाठकों, उनके इतिहास, संस्कृति और सबसे बढ़कर उनकी जरूरतों का विशेष ख्याल रखा है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपनी अनूदित कृतियों में व्याख्या, संशोधन एवं संपादन किया है।

आचार्य शुक्ल द्वारा अनूदित कृतियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वे शब्दशः अनुवाद की बजाय अपने समय और समाज के संदर्भों और जरूरतों को ध्यान में रखते हुए भावानुवाद को वरीयता देते थे।[2] इसके आलोक में शुक्ल जी ने न केवल अपनी अनूदित कृतियों में स्वतंत्र विचारों का समायोजन किया है, बल्कि आवश्यकतानुसार कई घटनाओं एवं विचारों को जोड़ा या परिवर्तित भी किया है। *विश्व प्रपंच* भाग–एक में आचार्य शुक्ल ने हैकल के विचारों से टकराते और उसकी आलोचना करते हुए अपने स्वतंत्र विचार रखे हैं।

लेकिन परिवर्तन का सबसे रोचक उदाहरण है अनूदित उपन्यास *शशांक,* जिसमें उन्होंने उत्तरार्ध को अपने ऐतिहासिक ज्ञान द्वारा व्यापक रूप से विकसित, परिमार्जित, परिवर्धित एवं परिवर्तित किया है। इस कार्य को औचित्य प्रदान करने के लिए शुक्ल जी ने *शशांक* की भूमिका में ऐतिहासिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध किया है कि हर्ष के समकालीन शासक शशांक का जो रूप अपने मूल उपन्यास में

---

[1] *पाश्चात्य साहित्य-चिंतन* – निर्मला जैन, कुसुम बाँठिया, पृ.183

[2] आज लगभग सभी अनुवाद विशेषज्ञ शब्दानुवाद और भावानुवाद के बीच की कठिनाइयों के दौरान भावानुवाद को ही वरीयता देते हैं।

राखाल बाबू ने प्रस्तुत किया है, वह गलत है। अर्थात् शुक्ल जी की यह स्पष्ट मान्यता थी कि मूल रचनाकार द्वारा की गई गलतियों को दुहराने के लिए अनुवादक बाध्य नहीं है और वह वास्तविक तथ्यों के अनुरूप अनूदित कृति में परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र है।

तथ्यों के साथ-साथ आचार्य शुक्ल ने *शशांक* में भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमानों के आधार पर भावुक संबंधों एवं उनकी निष्पत्तियों के संदर्भ में भी परिवर्तन किए हैं। *शशांक* की भूमिका में इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा– "मैंने इस उपन्यास के अंतिम भाग में कुछ परिवर्तन किया है। मूल लेखक ने हर्षवर्धन की चढ़ाई में शशांक की मृत्यु दिखाकर इस उपन्यास को दुःखांत बनाया है। पर जैसा कि सैन्यभीति के शिलालेख से स्पष्ट हैं शशांक मारे नहीं गए, वे हर्ष की चढ़ाई के बहुत दिनों पीछे तक राज्य करते रहे। अतः मैंने शशांक को गुप्तवंश के गौरवरक्षक के रूप में दक्षिण में पहुँचा कर उनके निःस्वार्थ रूप का दिग्दर्शन कराया है। मूल पुस्तक में करुण रस की पुष्टि के लिए यशोधवल की कन्या लतिका का शशांक पर प्रेम दिखा कर शशांक के जीवन के साथ ही उस बालू के मैदान में उसके जीवन का भी अंत कर दिया गया है। कथा का प्रवाह फेरने के लिये मुझे इस उपन्यास में दो और व्यक्ति लाने पड़े हैं– सैन्यभीति और उसकी बहिन मालती। लतिका का प्रेम सैन्यभीति पर दिखा कर मैंने उसके प्रेम को सफल किया है। शशांक के निःस्वार्थ जीवन के अनुरूप मैंने मालती का अद्भुत और अलौकिक प्रेम प्रदर्शित किया है। कलिंग और दक्षिण कोशल में बौद्ध तांत्रिकों के अत्याचार का अनुमान मैंने उस समय की स्थिति के अनुसार किया है।"[1]

उपन्यासों के अनुवाद के इतिहास में इतना बड़ा और रोचक परिवर्तन शायद ही किसी ने किया हो। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत शशांक और मूल उपन्यास के शशांक के व्यक्तित्व में मौलिक अंतर है। स्पष्ट है कि सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों एवं साक्ष्यों के आलोक में आचार्य शुक्ल अनुवादक को स्वतंत्र रचनाकार के समकक्ष रखते थे। *बुद्धचरित* भी अनुवादक द्वारा ली गई ऐसी स्वतंत्रताओं से अछूता नहीं है। इसकी चर्चा द्वितीय अध्याय के अंतर्गत की जा चुकी है।

---

[1] *शशांक* – (अनु.) आचार्य रामचंद्र शुक्ल; नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी; नवीन संस्करण, संवत् 2042 वि.,भूमिका, पृ.10

कृतियों के अनुवाद के दौरान आचार्य शुक्ल ने स्वाभाविक एवं सहज शैलीगत विशेषताओं का अनुकरण करते हुए भावानुवाद को वरीयता दी। जहाँ-जहाँ भी स्रोत भाषा की निजी विशिष्टताओं के परिप्रेक्ष्य में निष्प्रभावी समतुल्यों से उनका सामना हुआ, उन्होंने नवीन उद्‌भावनाओं को प्रभाव साम्य के आधार पर पुनर्सृजित किया। अपने अनुवाद कार्य में उनकी तैयारी रचनात्मक और मौलिक लेखन के समान ही थी।

वस्तुतः आचार्य शुक्ल के अनुवादक व्यक्तित्व में दो समाकलित व्यक्तित्वों का गुणसूत्र रूप में मिलन है। एक व्यक्तित्व मूल कृति के नितांत अनुगत रहता है तो दूसरा उसके समानांतर और उस पर लक्ष्य भाषा की सर्जनात्मक विशिष्टताओं का आरोप करता है, साथ ही निर्विकार बौद्धिक दृष्टा की भूमिका भी जीता है।

बुद्धचरित में अभिव्यक्त भाषा : चयन का कारण और उसका स्वरूप

आचार्य शुक्ल ने *लाइट ऑफ एशिया* का अनुवाद ब्रजभाषा में किया है। इस अनुवाद के पूर्व और पश्चात् भी शुक्ल जी ने कुछ मौलिक कविताओं की रचना की थी। उनकी लगभग सारी मौलिक कविताएँ खड़ी बोली में हैं। शुक्ल जी के काव्य संग्रह *मधुस्रोत* जो उनके द्वारा 1901 ई. से 1929 ई. के बीच लिखित कविताओं का संग्रह है[1], में भी कविताओं की भाषा खड़ी बोली है। उनके द्वारा अनूदित अन्य पुस्तकों, लेखों, निबंधों की भाषा भी खड़ी बोली ही है। अतः यह एक रोचक प्रश्न हो सकता है कि आखिरकार उन्होंने अपनी एकमात्र अनूदित काव्यकृति *बुद्धचरित* की भाषा के रूप में ब्रजभाषा का चयन क्यों किया?

इस प्रश्न पर बहुत कम लोगों ने विचार किया है और जो निष्कर्ष स्थापित किए हैं वे पूरी तरह असंतोषजनक और अपर्याप्त हैं। डॉ. सुधेश ने अपने लेख 'अंग्रेजी काव्य के हिंदी अनुवादक' में इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए लिखा है– "मेरा विचार है कि शुक्ल जी खड़ी बोली में कविता-लेखन करके अपनी सीमा पहचान चुके थे। इसीलिए उन्होंने *लाइट ऑफ एशिया* का अनुवाद ब्रजभाषा में करने का निश्चय किया था, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली।"[2] संजय कुमार तिवारी ने अपने लघु शोध प्रबंध 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कर्म'[3] में इसका कारण बताया है कि उस समय तक खड़ी

---

[1] *भारतीय साहित्य के निर्माता : आचार्य रामचंद्र शुक्ल* – रामचंद्र तिवारी, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पृ.91

[2] *अनुवाद* पत्रिका, अंक 96–97, जुलाई–सितंबर 1998, पृ.40

[3] जे.एन.यू. के भारतीय भाषा केंद्र में प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध (1997)

बोली अपरिपक्व अवस्था में थी और उसमें *बुद्धचरित* जैसे चरित काव्य की भाषा बनने लायक सामर्थ्य इस समय तक नहीं थी। नगीन चंद सहगल ने इस प्रश्न को *बुद्धचरित* की रचना के उद्देश्य से जोड़ते हुए ब्रजभाषा काव्य परंपरा की रक्षा को कारण बताया है।[1] अपने तर्क एवं समाधान की पुष्टि के लिए उन्होंने आचार्य शुक्ल के जिस कथन को उद्धृत किया है उसका संदर्भ ही गलत है।[2]

जहाँ तक डॉ. सुधेश का मत है कि शुक्ल जी खड़ी बोली में कविता-लेखन करके अपनी सीमा पहचान चुके थे, इसे मान सकना संभव नहीं है। खड़ी बोली हिंदी के क्षेत्र में आचार्य शुक्ल की सीमा बताना दरअसल अपनी ही सीमा बताना है। उनकी एक कविता का सिर्फ एक खण्ड उनकी कवित्व शक्ति को प्रकाशित करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए–

भूरी, हरी घास आस पास, फूली सरसों है,
पीली-पीली बिंदियों का चारों ओर है पसार;
कुछ दूर विरल, सघन फिर, और आगे
एक रंग मिला चला गया पीत पारावार।

– 'हृदय का मधुर भार'[3]

शुक्ल जी की इस कविता को उनके बाद के प्रगतिवाद और नयी कविता के किसी भी शीर्षस्थ रचनाकार की कविताओं के सम्मुख रखा जा सकता है। और अगर शुक्ल जी सचमुच अपनी सीमा पहचान चुके थे तो उन्हें 1922 ई. के बाद कम से कम खड़ी बोली में कविता तो नहीं ही लिखनी चाहिए थी, किंतु तथ्य यह है कि 1922 ई. के बाद भी शुक्ल जी ने तमाम कविताएँ खड़ी बोली हिंदी में लिखीं। अगर कुछ लोगों की शिकायत यह हो कि शुक्ल जी की सभी कविताएँ अपने चरमोत्कर्ष पर नहीं हैं तो ऐसा तो सभी कवियों के साथ है। शायद ही कोई ऐसा कवि हो जिसकी सभी कविताएँ और सभी पंक्तियाँ अपने काव्यात्मक चरमोत्कर्ष पर हों। कोई व्यक्ति यदि यह तर्क दे कि तुसलीदास ने *गीतावली* और *कृष्णगीतावली* की रचना ब्रजभाषा में इसलिए

---

[1] *काव्यानुवादः सिद्धांत और समस्याएँ* – नगीन चंद सहगल, पृ.74

[2] वही, पृ.74; सहगल जी के अनुसार शुक्ल जी ने उद्धृत अंश *हिंदी साहित्य का इतिहास* के पृ.660 पर लिखा है, किंतु *हिंदी साहित्य का इतिहास* के अब तक छपे किसी भी संस्करण में 660 पृष्ठ नहीं हैं।

[3] *भारतीय साहित्य के निर्माता : आचार्य रामचंद्र शुक्ल* – रामचंद्र तिवारी, पृ29 से उद्धृत

की क्योंकि वे अवधी में अपनी सीमा पहचान चुके थे, तो उससे कहने के लिए क्या बचता है? कुछ भी नहीं!

इसी प्रकार संजय कुमार तिवारी की यह बात स्वीकार्य नहीं है कि उस समय तक खड़ी बोली अपरिपक्व अवस्था में थी और उसमें *बुद्धचरित* जैसे चरित काव्य की भाषा बनने लायक क्षमता नहीं थी। भारतेंदु मंडल और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सतत प्रयासों के कारण 1922 ई. तक खड़ी बोली की प्रभावोत्पादक एवं अर्थ उत्पादक शक्तियों का पर्याप्त विकास हो चुका था। व्याकरणिक प्रतिमानों पर भी खड़ी बोली स्वयं को सिद्ध कर चुकी थी। *बुद्धचरित* के प्रकाशन से पूर्व ही *प्रिय प्रवास* (हरिऔध) *जयद्रथवध, भारत भारती* (मैथिली शरण गुप्त), *मिलन, पथिक* (रामनरेश त्रिपाठी) जैसी काव्य कृतियाँ खड़ी बोली को कविता का सशक्त माध्यम सिद्ध कर चुकी थीं।

संजय कुमार तिवारी ने अपने लघु शोध प्रबंध में यह तर्क भी दिया है कि खड़ी बोली में कवित्व शक्ति का विकास आगे चलकर छायावादी कवियों ने अपने उद्यम से किया। निश्चित रूप से खड़ी बोली हिंदी भाषा एवं उसके साहित्य के विकास में छायावादी कवियों का योगदान अप्रतिम है, किंतु सारा श्रेय सिर्फ उन्हें ही नहीं दिया जा सकता। खड़ी बोली के विकास में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् आचार्य शुक्ल के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। रही बात छायावादी कविताओं की भाषा की तो आचार्य शुक्ल ने ऐसी कई कविताएँ लिखी हैं जिनकी भाषा और भाव छायावादी कविताओं के समकक्ष हैं। इस बात की पुष्टि के लिए उनकी एक कविता का उदाहरण पर्याप्त होगा–

नव दल-गुंथित पुष्प हास यह!

शशि रेख सुस्मित विभास यह!

नभ चुवित नगनिविड-नीलिमा उठी अवनि उर की उमंग सी।

कलित विरल घन पटल-दिंगचल-प्रभा पुलकमय राग-रंग सी।

पांहुर धूम्र पुंज बहुखंडित;

कोर हिरण्य-मेखला मंडित।

– 'रूपमय हृदय' [1]

अतः *बुद्धचरित* की भाषा के रूप में ब्रजभाषा के चयन के उपर्युक्त बताये गये किसी भी कारण को मान सकना संभव नहीं है।

आचार्य शुक्ल ने *बुद्धचरित* के वक्तव्य में ब्रजभाषा के चयन के दो कारण स्वयं बताए हैं। पहला– "जिस वाणी में कई करोड़ हिंदी भाषी रामकृष्ण के मधुर चरित का स्मरण करते आ रहे हैं उसी वाणी में भगवान बुद्ध को स्मरण कराने का यह लघु प्रयत्न है।"[2] और दूसरा– "यद्यपि यह वाणी ब्रजभाषा के नाम से प्रसिद्ध हैं पर वास्तव में अपने संस्कृत रूप में यह सारे उत्तरापथ की काव्यभाषा रही है और है।"[3]

वस्तुतः *बुद्धचरित* की रचना का एक उद्देश्य अपने प्राचीन गौरव को उद्घोषित करना भी है, क्योंकि "जिन बातों से हमारा गौरव था उन्हें भूलते-भूलते आज हमारी यह दशा हुई।"[4] मुख्य रूप से ब्रजभाषा में ही उन महापुरुषों के जीवन का वर्णन किया गया है जिनसे भारतीय जनता प्रेरणा लेती है और अपने पूर्वज के रूप में उन्हें पाकर गौरवान्वित होती है। भगवान बुद्ध देश के इन्हीं गौरवशाली व्यक्तित्वों में से एक हैं।

ब्रजभाषा अपने संस्कृत रूप में सारे उत्तरापथ की काव्यभाषा रह चुकी थी। *बुद्धचरित* की 'काव्यभाषा' शीर्षक भूमिका में आचार्य शुक्ल ने ब्रजभाषा के आदित्व की चर्चा करते हुए उसे एक साथ जनभाषा और काव्यभाषा दोनों कहा है। ब्रजभाषा से पूर्व संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाएँ अपने काव्यभाषा रूप में जनभाषा नहीं बन सकी थीं। ब्रजभाषा के चयन का एक कारण यह भी था कि यह भाषा अपने को जनभाषा एवं काव्यभाषा दोनों मोर्चों पर एक साथ साधती थी।

बुद्धचरित में भाषा का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, यह इस बात से भी स्पष्ट होता है कि शुक्ल जी ने अपनी 'काव्यभाषा' शीर्षक से लिखी गई भूमिका में एडविन अर्नाल्ड के काव्य को विषय न बनाते हुए प्राकृत काल की भाषा से लेकर श्रीधर पाठक के काव्य में प्रयुक्त ब्रजभाषा तक के विकास को विषय बनाया है। यद्यपि यह भूमिका भाषा विकास के अध्ययन के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, तथापि *सरस्वती* पत्रिका के नवंबर 1922 ई. के अंक में *बुद्धचरित* के 'हिंदी की कुछ नई पुस्तकें' शीर्षक से छपे पुस्तक

---

[1] वही, पृ29 से उद्धृत
[2] *बुद्धचरित* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, वक्तव्य पृ.2
[3] वही, पृ2
[4] वही, पृ.1

परिचय में इस भूमिका को अनावश्यक कहा गया है। *बुद्धचरित* का परिचय देते हुए *सरस्वती* में पुस्तक समीक्षक[1] ने लिखा– "पुस्तक के आरंभ में काव्यभाषा शीर्षक का निबंध छापा गया है, परंतु सर एडविन आर्नल्ड के संबंध में एक भी बात नहीं लिखी गई है। अनुवादक महोदय ने काव्य की भाषा निर्धारित करने में इतना परिश्रम कदाचित् इसीलिए उठाया है कि पाठकों को बुद्धचरित की भाषा कवित्वमयी मान लेने में किसी प्रकार की आपत्ति न हो। यदि यह बात न हो तो यह निबंध इस पुस्तक में सर्वथा अनावश्यक है। आवश्यकता थी एक ऐसे निबंध की जिसमें आर्नल्ड की कृति की आलोचना की जाती।"[2]

बुद्धचरित की इस मायने में की गयी यह आलोचना युक्ति-युक्त है कि अनुवादक ने न तो मूल कृति के रचनाकार के संबंध में कोई चर्चा की है और न ही मूल कृति पर कोई विमर्श प्रस्तुत किया है। निश्चित रूप से यह एक कमी है जो *बुद्धचरित* के अध्ययन के दौरान अखरती है।

लेकिन इस समीक्षक की इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह निबंध इसलिए लिखा गया है ताकि पाठकों को *बुद्धचरित* की भाषा कवित्वमयी मान लेने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। इन समीक्षक महोदय ने *बुद्धचरित* के एक-दो कमजोर पदों का उदाहरण देकर यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि *बुद्धचरित* की भाषा अत्यंत लचर है और उसमें कवित्वशक्ति का नितांत अभाव है। *सरस्वती* पत्रिका के भाग 23, संख्या 2 के अंक में सुमित्रानंदन पंत की रचना 'उच्छ्वास' की भी ऐसी ही 'विध्वंसक' समीक्षा करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भाव एवं भाषा दोनों ही क्षेत्रों में यह रचना असफल है– "यह पंत जी की पहली रचना है। ...हमारी समझ में कविता में व्यर्थ शब्दाडंबर है। भाव बिल्कुल अस्पष्ट और उपमाएँ जबर्दस्ती ठूँस दी गई हैं। हमने इसमें चमत्कार कम देखा, हाँ चमत्कार सूचक चिह्नों(!) की भरमार अवश्य देखी।"[3] फिर भी शुक्र है, समीक्षक महोदय ने कम से कम यह तो स्वीकार किया कि कवि (पंत) में कवित्वशक्ति विद्यमान है– "उनकी रचना से यह साफ मालूम होता है कि उनमें कवित्व-बीज है और वह अंकुरित होगा।"[4]

---

[1] *सरस्वती* पत्रिका के इस अंक में पुस्तक समीक्षक का नाम अप्रकाशित है।

[2] *सरस्वती* पत्रिका, भाग 23, खंड 2, संख्या 5, नवंबर 1922, कार्तिक, वि 1979 सं., पृ.318

[3] *सरस्वती* पत्रिका, भाग 23, संख्या 2, पृ.168

[4] वही, पृ.168

इन समीक्षक महोदय की पंत के विषय में की गई भविष्यवाणी तो सत्य सिद्ध हुई, किंतु पंत की रचना 'उच्छ्वास' का मूल्यांकन समयानुसार गलत सिद्ध हुआ। पता नहीं क्यों, इन समीक्षक महोदय ने *बुद्धचरित* और 'उच्छ्वास' की कमियों को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाने में खूब मेहनत की, किंतु इनके गुणों की ओर से आँखें मूँद लीं।

बुद्धचरित की 'काव्यभाषा' शीर्षक भूमिका यदि अनावश्यक है तो इसी आधार पर *हिंदी शब्द सागर* की भूमिका को भी अनावश्यक घोषित किया जा सकता है। किंतु क्या आज हिंदी साहित्य का कोई विद्यार्थी ऐसे निष्कर्ष से सहमत हो सकेगा?

यद्यपि 1922 ई. के आस-पास तक हिंदी भाषा और विशेषकर खड़ी बोली के स्वरूप पर पर्याप्त कार्य हो चुका था, तथापि हिंदी भाषा की विविध बोलियों के बीच अतस्संबंध को लेकर कार्य होना शेष था। हिंदी भाषा के संबंध में दो मत प्रचलित हैं। पहला–हिंदी कोई एक भाषा न होकर उत्तर भारत के क्षेत्रों में बोली जानेवाली विविध बोलियों का सामूहिक नाम है। इन विभिन्न बोलियों में सांस्कृतिक समानताएँ हैं और इसी के आधार पर ये आपस में जुड़ती हैं। हिंदी भाषा के संबंध में दूसरा मत यह है कि हिंदी भाषा समूह में आनेवाली सभी बोलियाँ परस्पर आत्मनिर्भर न होकर वस्तुतः स्वतंत्र अस्तित्ववान बोलियाँ हैं और भाषा वैज्ञानिक आधार पर इन सबमें पर्याप्त असमानताएँ हैं।

यदि दूसरे मत को मान लिया जाए तो अवधी, ब्रज, राजस्थानी आदि विविध बोलियों का समृद्ध साहित्य हिंदी साहित्य के इतिहास से छिटककर दूर चला जाएगा। इस मत को मानते हुए शिवदान सिंह चौहान ने *हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष* शीर्षक से हिदी साहित्य का इतिहास लिखा। उनके अनुसार केवल खड़ी बोली ही वास्तविक हिंदी है; अन्य बोलियाँ स्वतंत्र भाषाएँ हैं, अतः उनका स्वतंत्र इतिहास लिखा जाना चाहिए।

आचार्य शुक्ल की स्पष्ट मान्यता थी कि इन बोलियों को स्वायत्तता दी जाए, किंतु एक ही सांस्कृतिक निकाय के अंतर्गत। इन बोलियों को एक-दूसरे से बिल्कुल स्वतंत्र भाषाओं के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन सभी बोलियों को एक ही भाषा के रूप में मानने के बारे में संभवतः कहीं विचार नहीं किया है, तथापि *बुद्धचरित* की भूमिका में उन्होंने उत्तरापथ की विविध बोलियों के योग से प्राचीन काल में ही एक सामान्य काव्यभाषा के बन जाने की चर्चा अनेक तर्कों एवं प्रमाणों के माध्यम से पुष्ट करते हुए अवश्य की है। उत्तरापथ की सामान्य काव्यभाषा

के रूप में अपभ्रंश के उद्‌भव पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने *बुद्धचरित* की भूमिका (काव्यभाषा) में लिखा– "काव्य की यह भाषा बहुत प्राचीन काल में बन चुकी थी। यही हिंदी की काव्यभाषा का पूर्वरूप है। ढाँचा पश्चिमी होने पर भी यह काव्य की सामान्य भाषा थी जिसका प्रसार सारे उत्तरापथ में था। इसका प्रमाण इसी बात से मिलता है कि प्राकृतों के समान इसमें देश भेद करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। प्राकृत व्याकरणों में जिसका उल्लेख अपभ्रंश के नाम से हुआ है काव्यभाषा रूप में उसका प्रचार व्रज, मारवाड़ और गुजरात तक ही नहीं था, एक प्रकार से सारे उत्तरीय भारत में था। इस व्यापकत्व के लिए यह आवश्यक था कि उसमें अवध आदि मध्यदेश के शब्द और रूप भी कुछ मिलें।"[1]

स्पष्ट है– आचार्य शुक्ल का विचार था कि उत्तरापथ की सामान्य काव्यभाषा के रूप में प्रत्येक बोली का संबंध एक खास विस्तृत क्षेत्र अर्थात् उत्तरापथ[2] की साझी संस्कृति और उसकी अर्थवत्ता से था। दरअसल "समूचे मध्यदेश की काव्यभाषा का आधार हर युग में एक रहा है। कभी आरंभ में वह खड़ी बोली था, तो कभी खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मिला-जुला रूप, फिर मध्य काल में ब्रजभाषा और अंशतः अवधी। और अब आधुनिक काल में यह आधार फिर से खड़ी बोली हुआ है। ...हिंदी क्षेत्र की भाषिक एकता का सबसे बड़ा प्रमाण यह समान काव्यभाषा का प्रयोग है।"[3]

आचार्य शुक्ल ने जब *लाइट ऑफ एशिया* का अनुवाद किया था, उस समय हिंदी की उच्च कक्षाओं में अध्ययन के लिए पाठ्य पुस्तकें एवं सामग्रियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं थीं। बाबू श्यामसुंदर दास और आचार्य शुक्ल ने इस कमी को पूरा करने का लगातार प्रयास किया। आचार्य शुक्ल के ये प्रयास कई पुस्तकों की भूमिका के रूप में संचित हैं। उनका *हिंदी साहित्य का इतिहास* स्वयं प्रथम बार *हिंदी शब्द सागर* की भूमिका के रूप में ही 1929 ई. में प्रकाशित हुआ था। अतएव *बुद्धचरित* की भूमिका को भी युगीन आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाना चाहिए।

युगीन आवश्यकताओं के कारण ही शुक्ल जी को अपने कवि रूप को उपेक्षित करना पड़ा। "लखनऊ विश्वविद्यालय की एक सभा में मृत्यु से पूर्व शुक्ल जी को

---

[1] *बुद्धचरित,* (काव्यभाषा), पृ.3

[2] बाद में चलकर रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक *भाषा और समाज* में इस क्षेत्र को हिंदी क्षेत्र और इसके निवासियों को हिंदी जाति के रूप में चिह्नित किया।

[3] *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास* – रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवाँ संवर्द्धित संस्करण, 2000, पृ.19

अश्रुपूर्ण नेत्रों से स्वीकार करना पड़ा कि विश्वविद्यालय की उच्च कक्षाओं में हिंदी को स्थान दिलाने के लिए उच्चस्तरीय समीक्षा पुस्तकों तथा निबंधों की रचना करनी पड़ी। परिस्थितिवश कवि रूप उपेक्षित हो गया।"[1]

बुद्धचरित की भूमिका (काव्यभाषा) में आचार्य शुक्ल ने प्राकृतकाल से लेकर श्रीधर पाठक की कविताओं की भाषा तक के विकास की चर्चा की है। भूमिका में मूल विमर्श इस बात पर है कि मध्यकाल से लेकर श्रीधर पाठक की कविताओं में क्रमशः विकसित होती ब्रजभाषा ने काव्यभाषा के रूप में मूलतः किस स्वरूप को अंगीकार किया। यह विमर्श इस प्रश्न से भी जुड़ता है कि *बुद्धचरित* में अभिव्यक्त ब्रजभाषा का स्वरूप क्या है?

सामान्य काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने *हिंदी साहित्य का इतिहास* में लिखा– "शिष्ट साहित्य में ब्रजमंडल के भीतर बोले जाने वाले सब शब्द नहीं ग्रहण किए हैं। ब्रजभाषा देश की सामान्य काव्यभाषा रही हैं। अतः काव्यों में उसके वे ही शब्द लिए गए हैं जो बहुत दूर तक बोले जाते हैं और थोड़े बहुत सब स्थानों में समझ लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए 'सिदौसी' शब्द को लीजिए जो खास मथुरा वृंदावन में बोला जाता है, पर साहित्य में नहीं मिलता।"[2]

आचार्य शुक्ल जनभाषा एवं काव्यभाषा के एकत्व के पक्षधर थे। कृत्रिम, गढ़े हुए तथा समाज में अप्रचलित शब्दों के काव्य में प्रयोग पर उन्होंने लगातार चिंता व्यक्त की। *बुद्धचरित* की भूमिका में राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा की विशेषता बताते हुए उन्होंने लिखा– "राजा साहब ने बहुत पुराने पड़े हुए, व्यवहार से उठे हुए और आजकल के कानों को भद्दे लगने वाले सड़े गले शब्दों को छाँटकर ब्रज की बोलचाल का निखरा हुआ माधुर्य दिखाया।"[3]

आचार्य शुक्ल ने भाषा को एक ढाँचे में बाँध देने के बजाय सामाजिक विकास की प्रक्रिया में देखा। रीतिकालीन कवियों द्वारा भाषा के बँधे-बँधाए रूप के प्रयोग के कारण शुक्ल जी ने उनकी आलोचना करते हुए लिखा– "रीतिग्रंथों की इस परंपरा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिंत्यबातों तथा जगत् के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने

---

1 *रामचंद्र शुक्ल* – (सं.) सुरेश चंद्र त्यागी, पृ.247
2 *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.271
3 *बुद्धचरित*, भूमिका (काव्यभाषा), पृ.35

पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया। वाग्धारा बँधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गए।"[1]

काव्यभाषा संबंधी आचार्य शुक्ल के इन विचारों को प्रायोगिक रूप में *बुद्धचरित* के भीतर देखा और परखा जा सकता है। शुक्ल जी काव्यभाषा के रीतिबद्ध प्रयोगों से असहमत थे, अतः उनकी काव्यभाषा समाज प्रचलित तथा बंधन मुक्त है। *बुद्धचरित* की भाषा इसीलिए इतनी प्रवाहमयी हो सकी है, क्योंकि वह वस्तुतः जनभाषा का ही काव्यात्मक रूप है–

"लग्यो खेलन ताहि लै सो मारि बहु किलकार;

काढ़ि दुहरी जीभ विषधर उठ्यो दै फुफकार।

हाय! पीरो पीरो वाको अंग सब छन माहिँ;

गयो हिलिबो डोलिबो, धन धर्‌यो मुख में नाहिँ।"[2]

मृत पुत्र के शव पर विलाप करती स्त्री के आर्त्त रुदन को ब्रजभाषा के चलते रूप के साथ बगैर किसी खास उपक्रम का प्रयोग किए शुक्ल जी ने इतने सहज रूप से उकेरा है कि एक हिलता-डुलता चित्र सा मन में खिंच जाता है, जिसमें ब्रज क्षेत्र की कोई दुखियारन अपने पुत्र के शव के पास विलाप कर रही है। वास्तविक जीवन में अत्यंत दुखी होने पर व्यक्ति जिस सहजतम भाषा का प्रयोग करता है वह उपर्युक्त पंक्तियों से अलग नहीं है।

आचार्य शुक्ल के लिए काव्य का आदर्श तुलसीदास और उनकी रचना *रामचरितमानस* हैं। इसीलिए शुक्ल जी की काव्यभाषा जनभाषा का संस्कृत रूप है, निरे मुहल्ले-टोले की भाषा नहीं। भाषा के इस रूप के माध्यम से शुक्ल जी *बुद्धचरित* में औदात्य के चरम उत्कर्ष को व्यंजित कर पाने में सफल हो पाते हैं–

"पुरनारि जुरी बहु बूझति हैं 'बलि हेतु लिए पशु को यह जात?

शुचि शांतिभरी मृदुता मुख पै, अति कोमल मंजु मनोहर गात।

कहु जाति कहा इनकी? इन पाए कहाँ अति सुंदर नैन लजात?

---

[1] *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.131

[2] *बुद्धचरित*, पृ.77

तन धारि अनंग किधौं मधवा यह जात चलो गति मंद ललात?"[1]

शुक्ल जी ने प्रचलित तत्सम शब्दों के माध्यम से ब्रजभाषा को संस्कारित किया। वस्तुतः काव्यभाषा के रूप में शुक्ल जी ने संस्कारित जनभाषा को ही स्वीकार किया; जनभाषा के अभद्र या कानों के लिए अरुचिकर प्रयोगों से उन्होंने लगातार दूरी रखी।

जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं– शिष्ट साहित्य के भीतर ब्रज क्षेत्र के वे ही शब्द आ पाए जो काफी दूर तक प्रयोग किए या समझे जाते थे। *बुद्धचरित* में इस परिपाटी का अनुशीलन करते हुए शुक्ल जी ने ऐसे शब्दों से परहेज किया है जो केवल ब्रज क्षेत्र के हों और उन्हें ब्रज क्षेत्र के बाहर का व्यक्ति कठिनाई से समझ सके। ब्रजभाषा को उत्तरापथ की सामान्य काव्यभाषा के रूप में स्थापित करते हुए शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में उत्तरापथ के उन शब्दों को भी ग्रहण किया है जो ब्रज क्षेत्र के नहीं हैं, किंतु पूरे उत्तरापथ में अत्यंत प्रचलित हैं। इसी कारण यद्यपि *बुद्धचरित* मूलतः ब्रजभाषा में किया गया अनुवाद है, तथापि उसमें अवधी, बुंदेली, खड़ी बोली आदि के शब्द प्रयोग भी चले आए हैं।

यहाँ तक तो *बुद्धचरित* की भाषा सकारात्मक रहती है, किंतु कुछ स्थानों पर शुक्ल जी ने पूरी की पूरी पंक्ति ही खड़ी बोली की रख दी है। ये स्थल निश्चित रूप से खटकते हैं और इस प्रकार के वाक्य प्रयोगों से भाषा की स्वाभाविक प्रवाहमयता में व्यवधान उत्पन्न होता है। किंतु ऐसे स्थल बहुत कम हैं, अतः इन्हें उपेक्षित किया जा सकता है।

लाइट ऑफ एशिया और *बुद्धचरित* के मध्य तुलनात्मक अध्ययन के दौरान संस्कृति, परंपरा, इतिहास आदि से संबंधित शब्दों, लाक्षणिक प्रयोग के शब्दों एवं पारिभाषिक शब्दावली को विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है।

लाइट ऑफ एशिया में संस्कृति, परंपरा और इतिहास से संबंधित शब्द दो रूपों में आए हैं। एडविन अर्नाल्ड ने भारतीय संस्कृति को अपनी काव्यकृति में मूर्त करने के उद्देश्य से संस्कृति से संबंधित कुछ शब्दों को ठीक उन्हीं रूपों में प्रयुक्त किया है जो भारतीय समाज में प्रचलित हैं। इस प्रकार के शब्द विशेष रूप से संज्ञाएँ एवं सर्वनाम हैं। कुछ विशेषणों को भी उन्होंने ज्यों का त्यों *लाइट ऑफ एशिया* में रख लिया है।

---

[1] वही, पृ.80

इन सबके बावजूद *लाइट ऑफ एशिया* में कई स्थलों पर अर्नाल्ड की अपनी संस्कृति प्रभावी होकर रूपाकार होने लगती है। शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में एडविन की संस्कृति को कृति से विलग करते हुए ऐसे स्थलों पर उनके समानांतर भारतीय जीवन को स्थापित किया है।

कुछ ऐसी ही स्थिति पारिभाषिक शब्दों एवं लाक्षणिक शब्द प्रयोगों को लेकर भी है। पारिभाषिक शब्दों खासकर बौद्ध दर्शन से संबंधित शब्दावली में अर्नाल्ड ने बहुधा पालि, संस्कृत या हिंदी पर्यायों का सीधे प्रयोग कर लिया है। ऐसे स्थलों पर अनुवादक को परेशानी का सामना लगभग नहीं करना पड़ा है। लाक्षणिक प्रयोगों के अनुवाद के दौरान जहाँ भी अंग्रेजी भाषा की अपनी विशिष्टता प्रभावी होने लगती है, अनुवादक ने ब्रजभाषा की विशिष्ट लाक्षणिक पदावली का उसके समानांतर या उसके स्थान पर प्रयोग किया है। इन सबकी विस्तृत चर्चा द्वितीय अध्याय के अंतर्गत पहले ही की जा चुकी है, अतः यहाँ सारणी बनाकर इन सब शब्द प्रयोगों की सविस्तार चर्चा करना निरर्थक है।

आचार्य शुक्ल ने *लाइट ऑफ एशिया* के अनुवाद के दौरान सतत रूप से भाषा की संप्रेषणीयता का ध्यान रखा है।*बुद्धचरित* के पाठक अर्थात् हिंदी के पाठकों के लिए उन्हीं की सांस्कृतिक विशेषता को धारित करनेवाली भाषा का शुक्ल जी ने प्रयोग किया। *बुद्धचरित* में यह विशेषता इतनी बलवती है कि यदि पाठक से यह छुपा लिया जाए कि यह एक अनूदित कृति है तो निश्चित रूप से *बुद्धचरित* का पाठक इसे एक मौलिक कृति के रूप में ही ग्रहण करेगा। पाठक को किसी भी पंक्ति के माध्यम से यह भान नहीं हो सकेगा कि वह एक अनूदित कृति का आस्वादन कर रहा है। मूल कृति के भावों की रक्षा के उपरांत भी यदि कोई अनूदित कृति स्वयं को इस प्रकार संप्रेषित करने में सक्षम हो पाए तो यह उस कृति की अप्रतिम उपलब्धि ही होगी।

"मूल कृतिकार के भावों के सम्यक् अवबोधन एवं उनके सुचारु संप्रेषण के लिए अनुवादक ने मूल के प्रत्येक शब्द के अर्थ-तत्त्व के अतिरिक्त उनके ध्वनि-तत्त्व तथा शब्द-विशेष के साथ अनिवार्यतः संपृक्त संस्कार एवं परंपरा आदि का भी अनुशीलन किया है और इन सभी के अनुरूप हिंदी पर्याय निर्धारित करने का यत्न किया है। इसीलिए शुक्ल जी शब्दानुवाद के स्तर से बहुत ऊँचे उठ गए हैं। परिणामतः *बुद्धचरित* में 'हाऊस ऑफ लव' 'रसधाम' बन कर आया है और 'लवली कोर्ट' 'रससमाज' बनकर,

'वर्चूज' का भाषांतर 'ऋद्विपाद' किया गया है और 'जजमेंट' का 'न्याय-विधान' तथा 'रीजेंट' 'दिक्पति' के रूप में प्रतिष्ठित है।"[1]

संप्रेषणीयता का ध्यान रखने के साथ शुक्ल जी ने ब्रजभाषा की सर्जनात्मकता को *बुद्धचरित* में इस प्रकार ढाला है कि जनभाषा प्रयोग की जीवंत प्रक्रिया में काव्यात्मकता के चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित हो गई है।

सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित *बुद्धचरित* के पुस्तक परिचय में समीक्षक ने इसकी भाषा को मृत घोषित कर दिया– "यदि कोई पण्डित श्रीधर पाठक जी की कृति में ब्रजभाषा की जीती-जागती कला प्रत्यक्ष देख सकता है तो *बुद्धचरित* की भाषा में उसका मृत कलेवर भी देख सकता है। भाषा के आचार्यों की दृष्टि से *बुद्धचरित* की भाषा सर्वथा निर्दोष हो सकती है, पर उसमें कला की संजीवनी शक्ति का सर्वथा अभाव है।"[2]

जिन एक-दो पदों के माध्यम से इन समीक्षक महोदय ने *बुद्धचरित* की भाषा को मृत घोषित किया है, निश्चय ही ऐसे कुछ पद *बुद्धचरित* में मौजूद हैं और उसकी काव्यात्मकता पर आघात करते हैं, किंतु दो पदों के उदाहरण के माध्यम से इन समीक्षक महोदय की यह घोषणा नितांत अनुचित है कि *"बुद्धचरित* ऐसे ही पद्यों में लिखा गया है।"[3] यह नहीं समझा जा सकता कि इन समीक्षक महोदय की नजरों में काव्यात्मकता क्या है, लेकिन *बुद्धचरित* के अधिकांश पद जीवंत काव्यात्मकता का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं–

"श्वेत मूँछन ऐंठि बारंबार पीसत दाँत
कढ्यो बाहर संग लै सामंत कंपित गात;
तमकि तीखे तुरग पै चढ़ि, रोष सहित निहारि,
चल्यो बीथिन बीच बढ़ि जहँ भरे पुरनरनारि।"[4]

लोकभाषा और काव्यभाषा के मध्य जीवंत संवाद एवं संबंध के लिए यह पद बेजोड़ उदाहरण हो सकता है। यह पद एक ऐसे राजा के क्रोध को नाटकीय तनाव के

---

1 *काव्यानुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ* – नगीन चंद सहगल, पृ.75–76
2 *सरस्वती पत्रिका*, सितंबर 1922, पृ.318
3 वही, पृ.318
4 *बुद्धचरित*, पृ.128

चरमोत्कर्ष पर व्यंजित करता है जिसका स्वयं का पुत्र उसी के राज्य की गरीब प्रजा के बीच भिक्षा मांग कर उसे नीचा देखने के लिए विवश कर रहा हो। *बुद्धचरित* की भाषा अधिकांश स्थलों पर वर्णन एवं व्यंजना दोनों का सक्षम रूप से निर्वाह करती है।

बुद्धचरित के कुछ पदों की भाषा जैसा कि *सरस्वती* में उनके 'पुस्तक-परिचय-दाता' ने लिखा, प्राणहीन है। ये पद अधिकांशतः उन जगहों पर हैं जहाँ एडविन ने एक ही स्थिति, भाव, विचार या घटना के लिए वर्णनों की लड़ी लगा दी है। ऐसी स्थिति में अनुवादक ने कई स्थलों पर अनावश्यक वर्णनों को त्याग दिया है, किंतु कुछेक स्थलों पर अनुवादक ने ऐसे वर्णनों को अनमने ढंग से अनूदित किया है।

बुद्धचरित में पदों की संख्या के हिसाब से ऐसे पदों की संख्या बहुत कम है और ऐसा कोई भी पद किसी मार्मिक, भाव प्रवण या कथा क्रम में महत्त्वपूर्ण स्थल के लिए नहीं आया है। अतः इन पदों के आधार पर समूचे *बुद्धचरित* की भाषा को आँकना उचित नहीं है।

"*बुद्धचरित* अपनी भावप्रवणता, प्रकृति एवं मनोभावों के चित्रण की कला एवं सानुनासिक ब्रजभाषा की पदावली के कारण मौलिक रचना के समान सरस बना गया है। द्विवेदी युग के ब्रजभाषा अनुवादों में मूल रचनाओं की भावराशि और संवेदना को संप्रेषणीय बनाने की कला का सफल रूप *बुद्धचरित* में देखा जा सकता है। इसमें ब्रजभाषा का स्वरूप सहज और प्रवाहमय है। इसमें ब्रजभाषा की भावदृष्टि से नया प्रयोग किया गया है। भाषा और अभिव्यंजना की शैली अद्वितीय है।"[1]

बुद्धचरित में काव्यानुवाद का स्वरूप और उसकी मीमांसा

"...रूपरेखा यथावत बना लेना, नाक-नक्श सही उतार लेना, बिल्कुल ठीक अनुपात कर लेना, और संभवतः काम चलाऊ रंग भी भर लेना– यह सब एक बात है; लेकिन इन सब में लालित्य, मुद्रा, भाव-भंगिमा और रंगों का उतार-चढ़ाव डाल पाना, एक ऐसी सचलता भर पाना जो इन सबमें जान डाल दे– यह एक बिल्कुल अलग बात है....।"[2] आचार्य शुक्ल द्वारा *लाइट ऑफ एशिया* का *बुद्धचरित* शीर्षक से किया गया काव्यानुवाद

---

1 *रामचंद्र शुक्ल* – (सं.) सुरेश चंद्र त्यागी, पृ247

2 *अनुवाद* पत्रिका, स्वर्ण जयंती विशेषांक में प्रकाशित जॉन ड्राइडन के लेख 'काव्यानुवाद की कला' (अनु. अरविंद कुमार) से उद्धृत, पृ.126

इस कसौटी पर खरा उतरने के लिए अनवरत संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। इस संघर्ष में शुक्ल जी बहुधा सफल सिद्ध होते हैं और कुछ स्थलों पर असफल भी।

आचार्य शुक्ल ने *हिंदी साहित्य का इतिहास* में प्रबंध काव्य के संदर्भ में तीन तत्त्वों को अनिवार्य माना है[1]– (i) संबंध निर्वाह, (ii) कथा के गंभीर और मार्मिक स्थलों की पहचान और (iii) दृश्यों की स्थानगत विशेषता का ध्यान। प्रबंध काव्य के रूप में *बुद्धचरित* को अनूदित करते हुए शुक्ल जी ने इन तीनों तत्त्वों को सतर्कता से समायोजित किया हैं।

बुद्धचरित में संबंध निर्वाह प्रशंसनीय है। प्रत्येक सर्ग में कहीं भी कथा का प्रवाह टूटता दिखाई नहीं पड़ता। पात्रों के नाम एवं उनसे संबंधित स्थितियाँ कथा क्रम में ही सहज रूप से समाविष्ट हो गयी हैं और उनके लिए अलग से सूचित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी है। शुक्ल जी ने अर्नाल्ड से अलग प्रत्येक सर्ग में घटनाओं के आधार पर उपसर्ग भी नियत किए हैं, किंतु इन उपसर्गों की वजह से कथा का प्रवाह भंग नहीं होता। वस्तुतः ये उपसर्ग पाठकों की सुविधा की दृष्टि से नियत किए गए हैं, अनुवादक की सुविधा की दृष्टि से नहीं।

बुद्धचरित में कथा के गंभीर और मार्मिक स्थलों की पहचान के प्रति आचार्य शुक्ल सतर्क हैं। किन स्थलों पर पाठकों के रसास्वादन के लिए विराम लेना है और किन स्थितियों में सहज गति से गुजर जाना है, इस बात का ध्यान उन्होंने बराबर रखा है। यही वजह है कि जहाँ 'विवाह', 'रंगभवन विहार', 'उद्‌बोधन', 'महाभिनिष्क्रमण', 'कपिलवस्तुगमन' जैसे मार्मिक स्थलों पर कथा की गति में ठहराव है तो वहीं अभिसंबोधन, मारविजय जैसे स्थलों पर शुक्ल जी घटनाओं का वर्णन करते हुए गुजर जाते हैं। इन स्थलों पर रुक कर किसी भावना को विशेष औत्सुक्य के साथ उभारने की कोशिश उन्होंने नहीं की।

इस सतर्क पहचान के बावजूद आचार्य शुक्ल *बुद्धचरित* में अनुवादक की विवशता में बँधे हैं। अर्नाल्ड ने *लाइट ऑफ एशिया* में कई ऐसे स्थलों पर वर्णनों की लड़ी लगा दी जहाँ शुक्ल जी सहज गति से गुजरने के इच्छुक हैं। ऐसे वर्णनों में शुक्ल जी ने थोड़ी छूट लेते हुए कुछ वर्णनों को छोड़ दिया है, लेकिन फिर भी अनुवादक के लिए एक बंधन तो होता ही है। इस बंधन में बँधे शुक्ल जी ने ऐसे वर्णनों

---

[1] *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.116

को बहुत ही अनमने ढंग से अनूदित किया है। ये वे स्थल हैं जहाँ *बुद्धचरित* अपनी काव्यात्मकता में सर्वाधिक लचर है। *लाइट ऑफ एशिया* के पंचम सर्ग (Book the fifth) में एडविन ने बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् विविध स्थलों के भ्रमण एवं तपश्चर्य्याओं का वर्णन किया है–

"Some day and night had stood with lifted arms,

Till–drained of blood and withered by disease –

Their slowly wasting joints and stiffened limbs

Jutted from sapless shoulders like dead forks

From forest trunks. Other had elenched their hands." [1]

शुक्ल जी ने इसका अनुवाद किया है–

"कतहुँ कोऊ ऊर्ध्ववाहु दिनांत लौं ठाढ़े रहैं,

जोड़ तें भुजदंड दोऊ मोड़ ना कबहूँ लहैं,

सूखि कै अति छीना औ गतिहीन ह्वै तन में मढ़े

उकठि मानो रूख तें ह्वै खूथ ऊपर को कढ़े।"[2]

यद्यपि ऐसे अनूदित अंश *बुद्धचरित* में कम हैं, तथापि ऐसे पद्यों के द्वारा *बुद्धचरित* की काव्यात्मकता निश्चित रूप से भंग होती है।

बुद्धचरित में शुक्ल जी ने दृश्यों की स्थानगत विशेषता का समुचित ध्यान रखा है। इस मामले में *बुद्धचरित* मूल कृति से विशेष सिद्ध होती है। *लाइट ऑफ एशिया* में दृश्यों की स्थानगत विशेषता के परिप्रेक्ष्य में अर्नाल्ड के सामने समस्या उत्पन्न होती है। एक ओर उनका अपना पाठक वर्ग है तो वहीं दूसरी ओर उनके कथानायक का इस पाठक वर्ग से नितांत भिन्न समाज। जैसा कि द्वितीय अध्याय के अंतर्गत वर्णन हो चुका है, अर्नाल्ड ऐसी स्थिति में कभी अपने पाठकों की ओर झुकते दिखाई पड़ते हैं तो कभी अपने काव्यनायक के समाज की ओर। वस्तुतः अर्नाल्ड के लिए यह समस्या सांस्कृतिक सहचरण की है। इसलिए जब वे नायक के समाज की ओर झुकते हैं तो साथ ही अपने पाठकों को समझाने का यत्न भी करने लगते हैं और जब वे अपने

---

[1] *Light of Asia*, p.75

[2] *बुद्धचरित*, पृ.72

पाठकों की ओर झुकते हैं तो काव्यनायक के समाज से कृति का दूर का संबंध होने लगता है।

बुद्धचरित में भारतीय संस्कृति के विशिष्ट व्याख्याता आचार्य शुक्ल के लिए ऐसी कोई समस्या नहीं है। शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में दृश्यों की स्थानगत विशेषता को पूरी तन्मयता से उभारा है। प्राकृतिक दृश्यों एवं देशगत विशेषताओं का रंग *बुद्धचरित* में *लाइट ऑफ एशिया* से इतर बहुधा मौलिक है। साथ ही, उनकी भारतीयता तो असंदिग्ध है ही। अपनी सांस्कृतिक परंपरा और उसके इतिहास के गहन बोध के कारण शुक्ल जी की अभिव्यक्ति में विशिष्ट परिपक्वता है। इसी वजह से उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपरा के अनुरूप *बुद्धचरित* में कई स्थलों पर परिवर्तन किए हैं। प्रकृति वर्णन में भी आचार्य शुक्ल ने भारतीय संदर्भ में एडविन अर्नाल्ड द्वारा की गई त्रुटियों को न केवल सुधारा है, बल्कि उन्हें और भी अधिक स्थायित्व, सौंदर्य एवं विश्वसनीयता प्रदान करने के उद्देश्य से परिवर्धित भी किया है। *लाइट ऑफ एशिया* के चतुर्थ सर्ग (Book The Fourth) के आरंभ में बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण का वर्णन करते हुए अर्नाल्ड ने ऐसी ही त्रुटि की है–

"Softly the Indian night sinks on the plains

At full moon, in the month of Chaitra Shud,

When mangoes redden and the asoka buds

Sweeten the breeze, and Rama's birthday comes,

And all the fields are glad and all the towns." [1]

इस पद में अर्नाल्ड ने भारत की प्राकृतिक विशिष्टता के संदर्भ में त्रुटि की है। इसे सुधारते हुए आचार्य शुक्ल ने प्रस्तुत पद को इस प्रकार अनूदित किया है–

"निखरी रैन चैत पूनो की अति निर्मल उजियारी।

चारुहासिनी खिली चाँदनी पटपर पै अति प्यारी।

अमराइन में धँसि अमियन को दरसावति बिलगाई,

सौंकन में गुछि झूलि रहीं जो मंद झकोरन पाई।

[1] *Light of Asia*, p.53

चुवत मधूक परसि भू जौ लौँ 'टप टप' शब्द सुनावैं

ताके प्रथम पलक मारत भर में निज झलक दिखावैं।

महकति कतहुँ अशोकमंजरी; कतहुँ कतहुँ पुर माहिँ

रामजन्म उत्सव के अब लौँ साज हटे हैं नाहीं।"[1]

इस उदाहरण में अनूदित पद मूल से काव्यात्मकता में तो बेहतर है ही, दृश्यों की स्थानगत विशेषताओं के आधार पर भी अनूदित अंश मूल से अधिक सार्थक एवं विश्वसनीय है। शुक्ल जी ने 'Indian night' का प्रयोग किए बिना भारतीय रात्रि की प्राकृतिक छटा को चित्रांकित कर दिया है। चैत्र के महीने में आम पकते नहीं हैं, बल्कि छोटे-छोटे टिकोरों (अमियाँ) के रूप में मंद हवा से झूलते रहते हैं। रामजन्म के उत्सव को भी शुक्ल जी ने 'अब लौँ साज हटे हैं नाहीं' कहकर अधिक चित्रमयता एवं भावनात्मकता प्रदान की है। इनके अतिरिक्त शुक्ल जी ने महुओं के 'टप टप' टपकने को अपनी ओर से जोड़कर वातावरण को और भी अधिक सजीव बना दिया है।

भाषा के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ का ख्याल रखने के साथ शुक्ल जी ने भाषा की प्रसंगानुकूलता का भी ध्यान रखा है। वर्णन एवं पात्रों के संवाद की स्थिति के अनुरूप *बुद्धचरित* की भाषा में भी लचीलापन है। शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि जिस पात्र के मुँह से संवाद बुलवाया जा रहा है उसकी सामाजिक स्थिति क्या है और उसकी भाषा कैसी होनी चाहिए। प्रबंध काव्य की इस विशिष्टता से उसमें औत्सुक्य, रोचकता और यथार्थपरकता का समावेश होता है। इसीलिए प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग करने से *बुद्धचरित* में ये सभी गुण सहज रूप से समाविष्ट हो गए हैं। यहाँ एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में प्रसंगानुकूल भाषा का वह अर्थ नहीं लिया है जिस अर्थ को लेकर चलने से संस्कृत के रचनाकारों ने अपने नाटकों के स्त्री, शूद्र एवं विदूषक पात्रों के मुँह से एक अलग भाषा (प्राकृत) ही बुलवा दी है। इसके विपरीत शुक्ल जी ने प्रसंगानुकूल भाषा का अर्थ अपने सामाजिक यथार्थ से नियत किया है। *बुद्धचरित* के अशिक्षित पात्र जहाँ देशज शब्दों से मिली-जुली ब्रजभाषा बोलते हैं तो वहीं शिक्षित पात्र तत्समोभिमुख ब्रजभाषा। ऐसा होने पर भी *बुद्धचरित* के पात्रों की भाषा के स्वरूप में आत्यंतिक अंतर विद्यमान नहीं है, बल्कि यह अंतर अत्यंत सहज है। *बुद्धचरित* में देशज शब्दों की

---

[1] *बुद्धचरित*, पृ.52

मिठास और तत्सम शब्दों की गंभीरता को एक ही रचना पटल पर इस प्रकार उकेरा गया है कि वे आपस में घुल-मिल से गए हैं।

भाषा की इस विशिष्टता के उपरांत भी एक बात *बुद्धचरित* के अध्ययन के दौरान खटकती है। आचार्य शुक्ल की अत्यंत सतर्क दृष्टि के बावजूद *बुद्धचरित* में कहीं-कहीं खड़ी बोली के वाक्य विन्यास आ गए हैं–

"बोले मुनि 'है बहुत ठीक, हे कुंवर हमारे

अब आयत परिमाण बताऊं तुमको सारे।""[1]

यद्यपि काव्य रूप में ये वाक्य सुंदर हो सकते हैं और हैं भी, तथापि ब्रजभाषा के सहज स्वाभाविक प्रवाह में ऐसे वाक्य प्रयोग अवरोध उत्पन्न करते हैं और पाठकों की रस ग्रहण प्रक्रिया के लिए बाधक सिद्ध होते हैं। साथ ही, इन प्रयोगों को अनौचित्य के रूप में भी देखा जा सकता है।

हिंदी साहित्य का इतिहास में अपने प्रिय कवि तुलसीदास की महान् रचना *रामचरितमानस* का वर्णन करते हुए आचार्य शुक्ल ने उसमें जिन प्रमुख गुणों को रेखांकित किया है, उनमें से एक महत्त्वपूर्ण गुण है– 'शृंगार की शिष्ट मर्यादा के भीतर बहुत ही व्यंजक वर्णन।'[2] *लाइट ऑफ एशिया* को अनूदित करने के दौरान शुक्ल जी ने *मानस* के इस गुण को पूरे मनोयोग से ग्रहण किया है। आचार्य शुक्ल अपने आलोचना कर्म में मर्यादावादी कहे जाते हैं, किंतु *बुद्धचरित* में अपने इस दृष्टिकोण को उन्होंने अपने लिए भी अमली जामा पहनाया है। आचार्य शुक्ल के सिद्धांत उनके व्यवहार में और उनका व्यवहार उनके सिद्धांतों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

अर्नाल्ड ने *लाइट ऑफ एशिया* की रचना के दौरान यद्यपि भारतीय संस्कृति की विशिष्टता का बराबर ध्यान रखा है, तथापि उनकी अपनी संस्कृति भी *लाइट ऑफ एशिया* में स्थापित है। ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन *लाइट ऑफ एशिया* में कुछ स्थलों पर अर्नाल्ड की ब्रितानी संस्कृति भारतीय संस्कृति के विरोधी स्वरूप में सामने आती है। शुक्ल जी ने ऐसे स्थलों पर निःसंकोच बदलाव करते हुए इन वर्णनों को भारतीय परंपरा और संस्कृति से जोड़ा है।

---

1 *बुद्धचरित*, पृ.7

2 *हिंदी साहित्य का इतिहास* – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.78

'मारविजय' कर धर्मचक्र का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् जब बुद्ध प्रथम बार कपिलवस्तु वापस पहुँचते हैं तो अर्नाल्ड ने उन्हें देखकर आर्त्त एवं भाव विह्वल हुई यशोधरा के मुख से सिद्धार्थ अर्थात् अपने पति का नाम कहलवाया है।[1] भारत की प्राचीन परंपरा में स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लिया करती थीं। स्त्रियों के लिए यह संकोच और मर्यादा का विषय हुआ करता था। आज भी भारत की ग्रामीण एवं परंपरावादी स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लिया करतीं। इसका ध्यान रखते हुए शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* में यशोधरा के मुख से 'हे स्वामी! हे आर्य्यपुत्र!" संबोधन कराया है और सिद्धार्थ नाम के उच्चारण को हटा दिया है।[2] इसी तरह शुक्ल जी ने मर्यादावादी दृष्टिकोण का अनुशीलन करते हुए *बुद्धचरित* के अनेक प्रसंगों में बदलाव किए हैं। ऐसे प्रसंगों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है– *'महाभिनिष्क्रमण'*–

"So with his brow he touched her feet, and bent
The farewell of fond eyes, unutterable,
upon her sleeping face, still wet with tears;
And thrice around the bed in reverence,
As though it were an alter, softly stepped
With clasped hands laid upon his beating heart,
"For never," spake he, "lie I there again!"
And thrice he made to go, but thrice come back,
So strong her beauty was, so large his love:" [3]

लाइट ऑफ एशिया का यह अत्यंत और संभवतः सर्वाधिक मार्मिक स्थल है। सिद्धार्थ का जाना निश्चित है, उन्हें जाना ही है, किंतु उनका यशोधरा के प्रति अलौकिक प्रेम उन्हें बाँधे हुए है, जाने ही नहीं दे रहा है। सिद्धार्थ के लिए किंचित् उहापोह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक ओर यशोधरा के प्रति अविकल प्रेम है तो दूसरी ओर दुख से संतप्त समूचे विश्व की दुख निवृत्ति; एक ओर व्यक्तिगत सुख है तो दूसरी ओर विश्व-कल्याण। विश्व-कल्याण के लिए निजता और स्व से विमुक्ति अनिवार्य

---

[1] *Light of Asia,* p.127
[2] *बुद्धचरित,* पृ.125
[3] *Light of Asia,* p.65

है। "सिद्धार्थ के स्वत्व का मधुरतम अर्धांश है यशोधरा। सिद्धि के लिए सिद्धार्थ को यशोधरा का परित्याग करना होगा। किंतु, यशोधरा सामान्य कामिनी अथवा भामिनी मात्र नहीं है। इसीलिए अपरिहार्य परित्याग के इन क्षणों में वह गरिमामयी जीवन-सहचरी उनके लिए उपास्य हो जाती है। सिद्धार्थ पतिचरणानुरागिनी यशोधरा के समक्ष आज हृदय से नतमस्तक हैं। अतः असामान्य कीर्ति-लाभ के लिए किए जाने वाले अनुष्ठान की प्रस्तावना में पति अपने नेत्रों से पत्नी का चरण-स्पर्श करता है।"[1]

यही बात शुक्ल जी की मर्यादावादी दृष्टि को खटक गई। जिस समाज में स्त्रियाँ अपने पति का नाम तक न लेती हों उस समाज का एक प्रतिष्ठित पुरुष अपनी पत्नी के चरणों पर अपना मस्तक रख दे, यह कैसे संभव है। इस प्रसंग में बदलाव लाते हुए शुक्ल जी ने सिद्धार्थ द्वारा अपनी आँखों से यशोधरा का हाथ स्पर्श कराया है–

"यौं कहि नयनन लाय लियो निज प्यारी को कर।
नेहभरी पुनि दीठि विदा हित डारी मुख पर
करि परिक्रमा तीन सेज की पाँव बढ़ाए,
धकधकाति छाती को कर सों दोउ दबाए।

कह्यो "कबहुँ अब नाहिं सेज पै या पग धरिहौं।
छानत पथ की धूरि धरातल बीच बिचरिहौं।"
तीन बेर उठि चल्यो, किंतु सो फिरि फिरि आयो;
ऐसो वाके रूप प्रेम सौं रह्यो बँधायो;"[2]

शुक्ल जी द्वारा किए गए इस बदलाव के कारण मूल कृति और अनूदित कृति के भावार्थ में मौलिक अंतर उत्पन्न हो जाता है। अर्नाल्ड के वर्णन में प्रेम और उसके छूटने की वेदना तो है ही, एक स्त्री को उसके निश्छल गार्हस्थ्य प्रेम की बीच मँझधार में छोड़कर जाने का अपराध-बोध भी है। यह अपराध-बोध इस कारण से भी है कि

---

[1] *काव्यानुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ* – नगीन चंद सहगल, पृ.154
[2] *बुद्धचरित*, पृ.63

जिस पुरुष द्वारा वह त्यागी जा रही है, उससे वह नितांत और निःस्वार्थ प्रेम करती है तथा उस पुरुष के मन में उत्पन्न हुई विरक्ति के पीछे वह कोई कारण नहीं है। शुक्ल जी के वर्णन में प्रेम तो है, किंतु सिद्धार्थ के भीतर का अपराध-बोध सिरे से ओझल है। वेदना का स्वर भी अनूदित कृति में कुछ मंद ही दिखाई देता है। इसी वजह से इस अत्यंत मार्मिक वर्णन में अनूदित कृति की प्रभावोत्पादक क्षमता मूल कृति से बहुत कम हो गयी है। अपनी मर्यादावादी दृष्टि को दृढ़ता से पकड़े रहने की बड़ी कीमत शुक्ल जी ने इस प्रसंग में काव्यात्मक उत्कर्ष के क्षय के रूप में चुकाई है।

लाइट ऑफ एशिया मनोहारी प्रकृति चित्रों से परिपूर्ण रचना है। इस कृति में प्रकृति का सजीव, सरस, संश्लिष्ट एवं चित्र-बिंबात्मक वर्णन किया गया है। इस रूप में *लाइट ऑफ एशिया* पर स्वच्छंदतावाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है। यह प्रभाव *लाइट ऑफ एशिया* में छंद के चुनाव (ब्लैंक वर्स) से लेकर कथ्य के अभिगम तक विस्तरित है।

लाइट ऑफ एशिया में प्रकृति और मनुष्य मिलकर एक सुगठित निकाय की सर्जना करते हैं। यह बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अंतःप्रकृति का सामंजस्य है जिसमें प्रकृति और मनुष्य परस्पर पूरक सिद्ध होते हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार अपने इस रूप में कविता 'मनुष्य की भावनात्मक सत्ता के प्रकार का प्रसार करती है।'[1] कविता में मनुष्य और प्रकृति के संबंध को लेकर आचार्य शुक्ल विशेष रूप से आग्रहशील थे। उनके अनुसार– "अनंत रूपों में, प्रकृति हमारे सामने आती है– कहीं मधुर, सुसंज्जित या सुंदर रूप में, कहीं रूखे, बेडौल या कर्कश रूप में, कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूप में, कहीं उग्र, कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके इन सब रूपों में लीन होता है, क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुख-भोग नहीं, बल्कि चिरसाहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है।"[2] ऐसा इसलिए है क्योंकि– "संपूर्ण सत्ताएँ एक ही परम सत्ता और संपूर्ण भाव एक ही परम भाव के अंतर्भूत हैं। अतः बुद्धि की क्रिया से हमारा ज्ञान जिस अद्वैत भूमि पर पहुँचता है उसी भूमि तक हमारा भावात्मक हृदय भी इस सत्व-रस के प्रभाव से पहुँचता है। इस प्रकार

---

[1] *चिन्तामणि* (पहला भाग) – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1999, पृ.100

[2] वही, पृ.102–103

अंत में जाकर दोनों पक्षों की वृत्तियों का समन्वय हो जाता है। इस समन्वय के बिना मनुष्यत्व की साधना पूरी नहीं हो सकती।"[1]

शुक्ल जी की काव्य संबंधी इस कसौटी पर *लाइट ऑफ एशिया* खरी उतरती है। इस बात को महत्त्व प्रदान करते हुए कुछ आलोचकों ने तो यहाँ तक माना है कि कवि अश्वघोष द्वारा संस्कृत में रचित एक भारतीय कृति *बुद्धचरित* के होते हुए भी शुक्ल जी ने एक विदेशी द्वारा रचित प्रबंध काव्य *लाइट ऑफ एशिया* को इसलिए चुना क्योंकि वह आधुनिक तो है ही, मनोहारी प्रकृति-चित्रों से भी परिपूर्ण है।[2]

बुद्धचरित का अध्ययन करते हुए पाठक इस बात को साफ रेखांकित कर सकता है कि अनुवाद के दौरान शुक्ल जी का मन यदि सबसे अधिक कहीं रमा है तो वह प्रकृति वर्णन में ही। इसीलिए प्रकृति वर्णनों के दौरान *बुद्धचरित* अपने संपूर्ण औदात्य एवं काव्यात्मक उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। प्रकृति की सूक्ष्मतम क्रियाओं को पूर्ण तन्मयता और सतर्कता के साथ शुक्ल जी ने विविध बिंब-विधानों में इस प्रकार संश्लिष्ट रूप से पिरोया है कि उनसे अर्थ की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि सीधे अनुभूति का संप्रेषण होने लगता है। कही-कहीं तो यह स्थिति भी हो जाती है कि अनुवाद मूल को प्रकृति वर्णन और बिंब-विधान के क्षेत्र में बहुत पीछे छोड़ देता है। ऐसे स्थलों पर यद्यपि मूल कृति भी काव्यात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण है, तथापि अनूदित कृति का काव्यात्मक सौंदर्य अनुपम एवं अतुलनीय की सीमा तक पहुँच जाता है।

"..... beneath,

striped squirrels raced, the mynas perked and picked,

The seven brown sisters chattered in the thorn,

The pied fish-tiger hung above the pool,

The egrets stalked among the buffaloes,

The kites sailed circles in the golden air;

About the painted temple peacocks flew,

The blue doves cooed from every well, far off

---

[1] वही, पृ.104

[2] *रामचंद्र शुक्ल* – (सं.) सुरेश चंद्र त्यागी, पृ.239

The village drums beat for some marriage-feart
All things spoke peace and plenty, and the prince
Saw and rejoiced." [1]

"कूकि उठे कबहूँ कल कंठ सौं कोकिल कानन में रस नाय।
गीध गिरैं छिति पै कछु देखत, चील रही नभ में मँड़राय।
श्यामल रेख धरे तन पै इत सौं उत दौरि कै जाति गिलाय।
निर्मल ताल के तीर कहूँ बक बैठे हैं मीन पै ध्यान लगाय।

चित्रित मंदिर पै चढ़ि मोर रह्यो निज चित्रित पंख दिखाय।
ब्याह के बाजन बाजन की धुनि दूर के गाँव में देति सुनाय।
वस्तुन से सब शांति समृद्धि रही बहु रूपन में दरसाय।
देखि इतौ सुख साज कुमार रह्यो हिय में अति ही हरखाय।"[2]

ऐसे वर्णनों में काव्यात्मक सौंदर्य के साथ-साथ अनूदित कृति मूल कृति से प्रामाणिक अनुभूतियों के आधार पर भी श्रेष्ठ सिद्ध होती है। वस्तुतः ऐसा होना नितांत स्वाभाविक है। भारत की प्रकृति और संस्कृति में रचे-बचे व्यक्ति की अभिव्यक्ति एवं दूर देश और इस देश की मात्र एक झलक पानेवाले व्यक्ति के वर्णन के मध्य अनुभूति की प्रामाणिकता का अंतर स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है। जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है– अर्नाल्ड के लिए इस समस्या का सीधा संबंध जीवन और संस्कृति के सहचरण से है। इसीलिए कहीं-कहीं मूल रचनाकार ब्रितानी प्राकृतिक एवं सामाजिक तत्त्वों तथा भारतीय प्राकृतिक और सामाजिक तत्त्वों के बीच गड्डमड्ड कर देता है। ऐसे स्थलों पर शुक्ल जी जैसे भारत की ग्रामीण संस्कृति में रच-बसे व्यक्ति के लिए महज खुद का अनुभव ही प्रामाणिक अनुभूति बन जाता है। बसंत ऋतु में पिता की सलाह और आदेश

---

[1] *Light of Asia,* p.13
[2] *बुद्धचरित,* पृ.12

पर जब सिद्धार्थ नगर भ्रमण करने के लिए निकलते हैं तो प्रकृति, खेतों और किसानों की तात्कालिक स्थिति के वर्णन में अर्नाल्ड ने विचित्र अनर्थ कर डाला है–

"Fair is the season with new leaves, bright blooms,
Gren grass, and cries of plough-time." so they rode
Into a land of Wells and gardens,where,
All up and down the rich red loam, the steers
Strained their strong shoulders in the creaking yoke
Dragging the ploughs; the fat soil rose and rolled
In smooth long waves back from the plough; who drove
Planted both feet upon the leaping share." [1]

बसंत ऋतु में किसान 'योक' को हल में नाँध कर खेतों की जुताई कर रहे हों और हल के द्वारा उखाड़ी गई चिकनी मिट्टी लंबी धाराओं के रूप में उनके दोनों पैरों पर आ रही हो, ऐसा दृश्य कम से कम भारत में तो कहीं देखने को नहीं ही मिलने वाला है। बसंत ऋतु में भारत में स्थिति कुछ इस प्रकार होती है–

चढ़े रथ पै दोउ जात चले, बन, बाग, तड़ाग लसैं चहूं ओर।
लसे नव पल्लव सों लहरैं लहि कै तरु मंद समीर झकोर।
कहूँ नव किंशुकजाल सों लाल लखात घने बनखंड के छोर।
परैं तहँ खेत सुनात तहाँ श्रमलीन किसानन को कल रोर।

लिपे खरिहानन में सुथरे पथपार पयार के ढूह लखात।
मढ़े नव मंजुल मौरन सों सहकार न अंगन माँहिं समात।
भरि छबि सों छलकार रहे, मृदु सौरभ लै बगरावत बात।
चरैं बहु ढोर कछारन में जहँ गावत ग्वाल नचावत गात।"[2]

---

[1] *Light of Asia,* p.12
[2] *बुद्धचरित,* पृ.11

अर्नाल्ड इस वर्णन में यह भूल गए कि इंग्लैंड का 'स्प्रिंग' (Spring) पूरी तरह से भारत का बसंत नहीं है। बसंत ऋतु में भारत का किसान केवल इसलिए खुश नहीं होता क्योंकि इस ऋतु में जाड़ा और गर्मी बराबर हो जाते हैं तथा हर तरफ नए उगे पत्तों की हरियाली छा जाती है, बल्कि वह अधिक खुश इसलिए होता है क्योंकि उसकी हाड़-तोड़ मेहनत का फल उसे इसी ऋतु में कटे हुए अनाजों के रूप में मिलता है और कम से कम कुछ दिनों के लिए उसकी दरिद्रता दूर हो जाती है। सिद्धार्थ के पिता ने बसंत ऋतु में उन्हें भ्रमण करने को इसीलिए कहा ताकि उन्हें कहीं भी दुख और दरिद्रता के दर्शन न हो सकें।

इस उदाहरण में अनुभूति की प्रामाणिकता का संबंध केवल प्रकृति वर्णन से ही नहीं है, बल्कि प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक रिश्ते तथा मनुष्य के जीवन-संघर्ष से भी है। भारत के किसान को इंग्लैंड के किसान के समकक्ष नहीं रखा जा सकता और आचार्य शुक्ल के समय के भारतीय किसान के संबंध में तो ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। खाये-अघाए लोगों और जीवन संघर्ष में तपे हुए व्यक्ति की अनुभूति में जो मौलिक अंतर हो सकता है, वह अर्नाल्ड और शुक्ल जी के वर्णन में विद्यमान है। इसीलिए अनुभूति के बहुआयामी फलक पर प्रामाणिकता के संदर्भ में एडविन अर्नाल्ड पर शुक्ल जी की श्रेष्ठता असंदिग्ध है। आचार्य शुक्ल न केवल भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के प्रकाण्ड मर्मज्ञ हैं, बल्कि उनके जीवन संघर्ष के तमाम तपे-तपाये अनुभव भी उनके साथ हैं।

युगीन आवश्यकताओं, समस्याओं, चिंताओं और विमर्शों से टकराए तथा उन्हें अपने समय और समाज के शाश्वत मूल्यों एवं प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में समझे और अभिव्यक्त किए बिना कोई भी रचना यशस्वी तथा दीर्घजीवी नहीं हो सकती। यदि इन संश्लिष्ट तत्त्वों के पारस्परिक संबंधों के प्रति कोई रचनाकार लापरवाह हो जाए तो उसकी रचना प्रक्रिया के एकांगी हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। वस्तुतः रचना में अभिव्यक्त सामाजिक दृष्टि का रचनाकार की ऐतिहासिक दृष्टि से बुनियादी संबंध होता है। "ऐतिहासिक दृष्टि के अभाव में साहित्य की सामाजिक दृष्टि समकालिक संबंध तक सीमित हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह या तो अनुभववाद का शिकार होती

है या संरचनावाद का। इन खतरों से बचने के लिए सामाजिक दृष्टि और ऐतिहासिक दृष्टि में एकता आवश्यक है।"[1]

निश्चित रूप से एडविन अर्नाल्ड के मन में भारतीय जीवन और दर्शन विशेषकर बौद्ध दर्शन एवं आम्नाय के प्रति आकर्षण का भाव था, अन्यथा वे एक भारतीय चरित्र को इतनी उदात्तता, प्रेम और तन्मयता के साथ रूपायित न करते। यद्यपि, जैसा कि संभाव्य था, अपनी सांस्कृतिक स्थिति के कारण उनसे भारतीय समाज और उसकी जीवन शैली को अपनी काव्यकृति में सृजित करने के दौरान भूलें हुई हैं, तथापि भारतीय समाज, उसकी जीवन शैली, उसकी समस्याओं और आवश्यकताओं को समझने की उनकी कोशिश प्रशंसनीय है। उनकी कोशिश एक रेखीय और क्षैतिज ही नहीं रही, बल्कि भारतीय जीवन और दर्शन के मूल तत्त्वों के ऐतिहासिक विकास को भी उनकी कृति आत्मसात करती है तथा स्वयं को श्रेष्ठतर सिद्ध करती है।

फिर भी, निस्संदेह भारतीय संदर्भ में सामाजिक दृष्टि और ऐतिहासिक दृष्टि का पारस्परिक संबंध और द्वंद्वात्मक समन्वय *बुद्धचरित* में, जैसा कि अनुवादक की खुद की स्थिति के कारण संभाव्य था, अधिक परिपक्व है।

भारतीय लोगों और किसानों की जीवंतता तथा मुस्कुराहट के पीछे छिपे दरिद्रता के दर्द को यदि सिद्धार्थ ने अनुभव किया तो अर्नाल्ड को भी यह बेचैन किए बिना न रह सका–

"...But, looking deep, he saw

The thorns which grow upon this rose of life:

How the swart peasant sweated for his wage,

Toiling for leave to live; and how he urged

The great-eyed oxen through the flaming hours,

Goading their velvet flanks;....." [2]

अर्नाल्ड ने भारतीय किसान को नस्लीय आधार पर काला कहा है। उनके वर्णन में केवल किसान का ही जीवन संघर्ष नहीं है, बल्कि ये किसान एक तरीके से सभी

---

[1] *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका* – मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, 1989, पृ.65

[2] *Light of Asia,* p.13

काले रक्त वाले मनुष्यों के जीवन संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। फिर 'Swart' का अर्थ अगर काले रंग का लगाया जाए तो अर्नाल्ड का यह पद किसान जीवन की उस विडंबना और संघर्ष का वर्णन करता है, जिसमें पेट की भूख मिटाने के लिए धूप में खड़े-खड़े ही उसका रंग बदल जाता है। इस दूसरे अर्थ को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि किसी श्वेत नस्ल के मनुष्य के लिए तो सभी भारतीय काले हैं। यह अर्थ इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अर्नाल्ड ने केवल किसानों को ही काले रक्त का या काला कहा है, अन्य भारतीय पात्रों के लिए इस प्रकार के विशेषण का प्रयोग उन्होंने नहीं किया है। यहाँ तक कि कठिन श्रम में लगे शूद्रों के लिए भी उन्होंने इस विशेषण का प्रयोग नहीं किया।[1] रोचक तथ्य यह है कि आचार्य शुक्ल ने उपर्युक्त पद के अनुवाद में किसान को 'काला' या 'काले रक्त वाला' न कहकर दीन कहा है,[2] जबकि कठिन श्रम में लगे शूद्रों के लिए उन्होंने 'श्याम शरीर' विशेषण का प्रयोग किया है।[3] शुक्ल जी ने 'Swart' का अर्थ नस्लीय आधार पर निश्चित किया जो कि इस प्रसंग में इस शब्द का मुख्य अर्थ है।

एक तरीके से अर्नाल्ड ने इस वर्णन में सभी काले लोगों के जीवन संघर्ष को उरेहने की कोशिश की है, लेकिन आचार्य शुक्ल की सतर्क दृष्टि अपने लक्ष्य अर्थात् किसानों के जीवन संघर्ष पर ही रही–

"सूक्ष्म रूप सौं पै वाने कीनो विचार जब।
देखे जीवन कुसुम बीच कारे कंटक तब।
कैसो दीन किसान पसीनो अपनो गारत।
केवल जीयन हेतु कठिन श्रम करत न हारत।

गोदि लकुट सौं दीर्घविलोचन बैलन हाँकत।
जरत घाम में रहत धूरि खेतन की फाँकत।"[4]

---

[1] वही, पृ.46
[2] *बुद्धचरित*, पृ.12
[3] वही, पृ.45
[4] वही, पृ.12

आचार्य शुक्ल का वर्णन अधिक यथार्थपरक, मर्मस्पर्शी और काव्यात्मक है। *गोदान* भारतीय किसान जीवन का इस्पाती दस्तावेज है। *गोदान* का होरी अगर एक ओर दीनता की मिसाल है तो दूसरी ओर लगातार हारने के बावजूद उसने जैसे न हारने की कसम ही खा रखी हो। भारतीय किसान जीवन की इस मूल वृत्ति को प्रेमचंद से पहले ही आचार्य शुक्ल ने अनुभव कर लिया था। खेतों की धूल फाँकते किसान के दृश्य को अपनी ओर से जोड़कर शुक्ल जी ने समूचे वर्णन को एक बिंब में परिवर्तित कर दिया है। लक्षणा के सारगर्भित प्रयोग से यह पद नवीन अर्थवत्ता और काव्यात्मक उत्कर्ष प्राप्त करता है।

किंतु श्रम अकेले किसान कर रहा हो, ऐसा नहीं है। वस्तुतः किसान का श्रम उस कड़ी की ओर भी संकेत कर रहा है, जिसमें प्रत्येक सामर्थ्यवान अपने से निर्बल को एक अलग ही दृष्टि से देखता है। इस कड़ी में यदि किसान के ऊपर बलशाली हैं तो इसी कड़ी में बैलों की दो जोड़ी भी है। जंगलराज में प्रत्येक बलशाली अपने से निर्बल को मार कर खा जाता है। कहीं यह जंगलराज हमारे आसपास हमारे खुद के समाज में तो व्याप्त नहीं हो गया है–

"How salt with sweat the peasant's bread! how hard

The oxen's service! in the brake how fierce

The war of weak and strong! i' th' air what plots!

No refuge e'en in water. Go aside

A space, and let me muse on what ye show." [1]

जीवन एक जटिल प्रक्रिया है; जितना रासायनिक रूप से, उतना ही सामाजिक रूप से भी। जीवन की जटिलता को आत्मसात किए बिना उसकी संपूर्णता को आत्मसात कर सकना संभव नहीं है। अर्नाल्ड की कोशिश उस मूल वृत्ति को संपूर्णता में ग्रहण करने की है, जो प्रकृति और मनुष्य निर्मित सामाजिक व्यवस्था दोनों में व्याप्त है। आचार्य शुक्ल ने अर्नाल्ड की उपर्युक्त पंक्तियों का सुंदर अनुवाद किया–

"कड़े पसीने की किसान की रूखी रोटी,

कैसो कड़वो काम करति बैलन की जोटी!

---

[1] *Light of Asia,* p.14

सबल निबल को समर चलत जल थल में ऐसो!

ह्वै तटस्थ टुक धरौं ध्यान, देखौं जग कैसो।"[1]

मूल और अनुवाद के भावार्थ में आंशिक अंतर है। अर्नाल्ड के लिए बैलों का काम बहुत कठिन (hard) या श्रमसाध्य है, जबकि शुक्ल जी के लिए कड़वा। इस अंतर में जटिलता को अधिक सूक्ष्मता से पकड़ने की आचार्य शुक्ल की क्षमता स्पष्ट दिखती है। बैल अत्यधिक श्रम करते हैं यह तो निर्विवाद है, किंतु इस कठिन श्रम का प्रतिफल उन्हें क्या प्राप्त होता है? इस कठिन श्रम का प्रतिफल है– किसान द्वारा उनकी लाठी-डंडे से पिटाई। इसलिए वस्तुतः बैलों का काम बहुत कड़वा है, केवल कठिन नहीं।

'सबल-निबल' के शाश्वत समर में 'निबल' अतएव पराजित और दरिद्र मनुष्य की क्या स्थिति होती है–

"Channa! what thing is this who seems a man,

Yet surely only seems, being so bowed,

So miserable, so horrible, so sad?"[2]

यद्यपि यह वर्णन सिद्धार्थ द्वारा एक वृद्ध के देखे जाने से संबंधित है, किंतु क्या यह सत्य नहीं है कि यह एक गरीब वृद्ध का ही चित्र है? यदि ऐसा नहीं है तो क्या प्रत्येक वृद्ध बिल्कुल ऐसा ही दिखता है? वस्तुतः यह एक वृद्ध का चित्र तो है, लेकिन उससे भी अधिक एक गरीब, बरसों से भूखे, सूख चुकी हड्डियों वाले ऐसे मनुष्य का चित्र है जिसके शरीर में अब मनुष्य नहीं रहा। इस प्रसंग में यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धार्थ कितने बुद्ध थे और अन्य कितने अबुद्ध। छंदक (Channa) ने उस डरावने कंकाल में केवल उसकी उम्र देखी, जबकि सिद्धार्थ ने उस डरावने रूपाकार में छिपे भूख के विरुद्ध जीवन भर के संघर्ष को महसूस कर लिया–

"Finds he no food that so his bones jut forth?"[3]

शुक्ल जी ने इस भाव को और भी प्रभावी रूप में एडविन से कम शब्दों में प्रकट किया है–

---

1 *बुद्धचरित*, पृ.13

2 *Light of Asia*, p.39

3 वही, पृ.39

"कहाँ है यह? देखिबे में मनुज सो दरसात;

विकृत, दीन, मलीन, छीन, कराल औ नतगात

नाहिं भोजन मिलत याको हाड़ हाड़ लखाय।"[1]

बौद्ध दर्शन अपनी जिन अवधारणाओं के कारण जनप्रिय हुआ, उनमें से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवधारणा थी– अमानुषिक एवं अतार्किक जाति व्यवस्था का सिरे से खंडन। यह व्यवस्था बहुत ही अतार्किक ढंग से न केवल मनुष्य और मनुष्य में विभेद करती थी (और है), बल्कि उसके भी आगे बढ़कर बेहद अमानुषिक ढंग से मनुष्य के एक बड़े वर्ग पर तमाम अपात्रताएँ भी लादती थी। बौद्ध दर्शन में ऐसी विभेदकारी व्यवस्था के लिए कोई जगह नहीं थी। बुद्ध ने इस व्यवस्था के प्रत्येक सिद्धांत, परंपरा एवं पूर्वग्रह का तार्किक तथा मार्मिक खंडन किया।

अर्नाल्ड ने जाति-व्यवस्था के विरुद्ध दिए गए बुद्ध के तर्कों को बेहद तीखे अंदाज में प्रस्तुत किया है–

"Then the world-honoured spake: "pity and need

Make all flesh kin. There is no caste in blood,

Which runneth of one hue, nor caste in tears,

Which trickle salt with all; neither comes man

To birth with tilka-mark stamped on the brow,

Nor sacred thread on neck....." [2]

यह तेवर *बुद्धचरित* में तनिक भी मंद नहीं पड़ा है–

"कह्यो जगदाराध्य 'कैसी कहत हौ यह बात?

याचना औ दयानाते जीव सब हैं भ्रात।

वर्णभेद न रक्त में है बहत एकहि रंग;

अश्रु में नहिं जाति, खारो ढरत एकहि ढंग

---

1 *बुद्धचरित,* पृ.39

2 *Light of Asia,* p.93

नाहिं जनमत कोउ दीने तिलक अपने भाल,

रहत काँधे पै जनेऊ नाहिं जनमत काल।"[1]

अनूदित अंश प्रभावी रूप से मूल के साथ तदात्म्य स्थापित कर लेता है। इसका कारण यह भी है कि अनुवादक के विचार इस अंश के प्रतिपाद्य के समान ही हैं। अपने 'जाति व्यवस्था'[2] लेख में आचार्य शुक्ल ने अनेक तर्कों, दलीलों और मान्यताओं के आधार पर इस व्यवस्था को अमानुषिक, मूर्खतापूर्ण और अंततः राष्ट्रीय भावना और एकता के विकास में अत्यंत बाधक सिद्ध किया है। बुद्ध द्वारा जाति व्यवस्था के विरोध में दिए गए तर्कों की एक खास बात यह है कि ये तर्क मध्ययुगीन महान् संत कवि कबीर द्वारा इस परिप्रेक्ष्य में दिए गए तर्कों से खासा साम्य रखते हैं।[3] यह बात महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि कुछ आलोचकों ने अपना यह मत निश्चित कर रखा है कि आचार्य शुक्ल कबीर प्रदत्त सिद्धांतों एवं तर्कों के विरोधी रहे हैं। इस संबंध में पहली बात यह है कि आचार्य शुक्ल ने कबीर के उस पक्ष का जो वस्तुतः तार्किक है, कहीं विरोध नहीं किया है। कबीर की प्रतिभा तथा प्रभाव के वे स्वयं कायल रहे हैं। उनका विरोध कबीर के कुछ काव्यशास्त्रीय निकषों से है, उनके तार्किक पक्ष से नहीं। दूसरी बात यह है कि आचार्य शुक्ल ने स्वयं जाति व्यवस्था को मूर्खतापूर्ण, अवसरवादी आदि कहा है और खिल्ली उड़ाई है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण उनका 'जाति व्यवस्था' लेख है जो इस संबंध में उनके विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। और अंततः तीसरी बात यह है कि यदि आचार्य शुक्ल को ऐसे तर्क पसंद नहीं थे तो वे बड़ी आसानी से *बुद्धचरित* से इन सबका विलोपन कर सकते थे, और कई जगहों पर जहाँ उन्हें वर्णन का अतिरेक या उसकी दिशा पसंद नहीं आयी, उन्होंने ऐसा किया भी है। जीवन और काव्य के संबंध में अत्यंत तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति के बारे में इस तरह की जिरह इसलिए करनी पड़ रही है क्योंकि आज अकादमिक स्तर पर अकसर आचार्य शुक्ल के लिए एक 'फ्रेम' बना लिया जाता है और उन्हें उस 'फ्रेम' में 'फिट' कर देने के पश्चात् अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली जाती है।

---

[1] *बुद्धचरित*, पृ.89

[2] *चिंतामणि–4* में संकलित, पृ.129–131

[3] दृष्टव्य : *कबीर* – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवीं आवृत्ति 1999; परिशिष्ट 2 में संकलित पद संख्या–2, 140, 141, 150, 151, 162, 228, 249

बुद्ध ने कर्मकाण्ड, बलि प्रथा, आडंबर तथा धर्म की असहिष्णु एवं हिंसात्मक वृत्तियों का तीव्र विरोध किया। वस्तुतः इन सभी का संबंध धर्म के एक खास तरीके के उपयोग बनाम उपभोग से था। यहाँ पर उपभोग करनेवाले मनुष्य थे और उपभोग बननेवाले पशु या पशु की ही तरह अपात्र समझे जानेवाले मानव। धर्म का यह पक्ष उस समय व्याप्त तमाम सामाजिक बुराइयों के मूल में था। अतः मनुष्यता की पुनर्सर्जना की प्रक्रिया में बुद्ध ने धर्म के इस पक्ष के सभी तत्त्वों पर तीव्र प्रहार किया। बुद्ध वचनों द्वारा अर्नाल्ड ने बेहद सधे हुए शब्दों में इन सबकी पोल खोली है–

"How hath it steaded man to pray, and pay

Tithes of the Corn and Oil, to Chant the Charms,

To slay the shrieking sacrifice, to rear

The stately fane, to feed the priests, ..."[1]

शुक्ल जी द्वारा इन पंक्तियों के किए गए अनुवाद में अक्खड़ता है और शोषित के प्रति आत्मीयता भी–

"करत विविध विधान सौं पूजा अनेक प्रकार,

धरत हैं नैवेद्य बहु, करि मंत्र को उच्चार।

हनत यज्ञन माहिं बलि के हेतु पशु बिललात

औ उठावैं बड़े मंदिर जहँ पुजारी खात।"[2]

और अंततः बुद्ध ने सबसे बड़ा कार्य यह किया कि उन्होंने देवताओं की याचना करते-करते विनीत, आर्त्त, आत्मबल से हीन हुए जाते मनुष्य को उसकी सत्ता, उसका आत्मबोध एवं उसका आत्मविश्वास उसे लौटा दिया। 'आत्मदीपो भव' मनुष्य के भीतर छिपी शक्ति और संभावना का महाउद्घोष है। यह पर-सत्ता के समक्ष घुटने टेकने की बजाय अपने ही अंतस् में व्याप्त शक्ति को पहचानने और इस पहचानने के क्रम में मनुष्यता को उसकी संभावनाओं के असीम तक ले जाने की कोशिश है–

"Nought from the helpless gods by gift and hymn,

Nor bribe with blood, nor feed with fruits and cakes;

---

1 *Light of Asia,* p.62

2 *बुद्धचरित,* पृ.60

Within yourselves deliverance must be sought;

Each man his prison makes.

Each hath such lordship as the loftiest ones;" [1]

अर्नाल्ड के भावार्थ और शुक्ल जी द्वारा अनूदित पंक्तियों के भावार्थ में मौलिक अंतर है–

"चहौ कछु असमर्थ देवन सौं न भेट चढ़ाय

स्तवन करि बहु भाँति, बेदिन बीच रक्त बहाय।

आप अंतस् माहिं खोजौ मुक्ति को तुम द्वार।

तुम बनावत आप अपने हेतु कारागार।

शक्ति तुम्हरे हाथ देवन सौं कछू कम नाहिं।"[2]

अर्नाल्ड ने मनुष्य को जो कुछ भी सर्वोत्तम है और जो भी सर्वाधिक गरिमामय है, उसके समकक्ष स्थापित किया है। आचार्य शुक्ल ने मनुष्य की आंतरिक शक्ति को देवताओं के समकक्ष तथा उसके ऊपर भी माना है। यहाँ अंतर यह है कि अर्नाल्ड के लिए मनुष्यता श्रेष्ठता और स्वामित्व की सीमा है, जबकि आचार्य शुक्ल का वर्णन मनुष्य की शक्ति को संभाव्यता के असीम में छोड़कर उसे स्वयं की उच्चतम सीमा खुद निर्धारित करने या असीम हो जाने की छूट देता है।

प्रत्येक समाज अपने जीवन के विविध अनुभवों और निष्पत्तियों के आधार पर कहावतों और लोकोक्तियों को गढ़ता है। अपने विशिष्ट अर्थों में रूढ़ हो जाने के चलते कुछ पद या पंक्तियाँ मुहावरे के रूप में समाज में प्रयुक्त होने लगती हैं। ये मुहावरे, कहावतें और लोकोक्तियाँ उस समाज द्वारा प्रयोग की जानेवाली भाषा को न केवल नई अर्थवत्ता प्रदान करती हैं, बल्कि उसकी संप्रेषणीयता और कम शब्दों में अधिकतम कह देने के गुण को भी बढ़ाती हैं। समाज और संस्कृति के ऐतिहासिक विकास से सीधे संबद्ध होने के कारण कहावतें, मुहावरें और लोकोक्तियाँ संबंधित भाषा की निजी

---

[1] *Light of Asia*, p.138

[2] *बुद्धचरित*, पृ.137

विशिष्टता का अनिवार्य एवं अपृथक् अंग होती हैं। इन्हीं विशेषताओं की वजह से एक भाषा की कहावतों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का दूसरी भाषा में अधिकांशतः उनके समानांतर एवं समतुल्य भावानुवाद किया जाता है, शब्दानुवाद नहीं। इस संबंध में शब्दानुवाद लगभग पूरी तरह से निरर्थक सिद्ध होते हैं।

लाइट ऑफ एशिया में अर्नाल्ड ने मुहावरों कहावतों तथा लोकोक्तियों का सर्जनात्मक उपयोग किया है। *लाइट ऑफ एशिया* की भाषा की प्रवाहमयता और ताजगी का यह भी एक कारण है। यद्यपि प्रत्येक समाज के ऐतिहासिक विकास अतएव संवेदनाओं में अंतर होता है, फिर भी कुछ संवेदनाएँ एवं अनुभव व्यापक रूप से मनुष्य जाति को प्रभावित करते हैं। ऐसी सर्वनिष्ठ संवेदनाओं तथा अनुभवों के लिए प्रत्येक समाज अपनी-अपनी भाषा में मुहावरे गढ़ता है। अर्नाल्ड ने *लाइट ऑफ एशिया* में जिन कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का उपयोग किया है, उनका संबंध इसी प्रकार की सर्वनिष्ठ संवेदनाओं एवं अनुभवों से है। अर्नाल्ड अपनी कृति में भारतीय वातावरण की निर्मिति हेतु सतत सतर्क हैं। यही वजह है कि अंग्रेजी भाषा की उन अनन्य लोकोक्तियों एवं कहावतों का, जिनकी उत्पत्ति अंग्रेजी भाषा का उपयोग करनेवाले समाज की विशिष्ट सांस्कृतिक विशेषताओं से हुई, अर्नाल्ड ने *लाइट ऑफ एशिया* में प्रयोग नहीं किया। अर्नाल्ड ने उन्हीं लोकोक्तियों एवं कहावतों का उपयोग किया जिनका अनेक भाषाओं में व्यापक रूप से प्रचलन है।

आचार्य शुक्ल को ऐसी कहावतों और लोकोक्तियों को अनूदित करने में कहीं दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ा है। ऐसे स्थलों पर अनुवाद की सहजता दर्शनीय है–

"That which ye sow ye reap. See yonder fields!

The sesamum was sesamum, the corn was corn. ..." [1]

"बवत जो सो लुनत सब; वह लखौ खेत दिखात

अन्न सौं जह अन्न उपजत, तिलन सौं तिल, भ्रात!"[2]

या

---

[1] *Light of Asia,* p.143

[2] *बुद्धचरित,* पृ.141

" "Liketh thee life?" – these say the babe is wise

That weepeth, being born."[1]

"लगत जीवन तिन्हैं कैसो नेक पूछो जाय;

कहत ते 'शिशु विज्ञ, रोवत जन्म जो यह पाय।' "[2]

सामान्यतः *बुद्धचरित* में आचार्य शुक्ल ने *लाइट ऑफ एशिया* में प्रयुक्त मुहावरों एवं लोकोक्तियों को ही अनूदित किया है, लेकिन कुछेक प्रसिद्ध मुहावरों का उपयोग उन्होंने स्वतंत्र रूप से भी किया है–

"फूलि अंग समाहुँ ना जब अनल दहकै घोर;"[3]

कुछ जगहों पर एक ही कहावत के लिए अलग शब्द-विधान का भी उपयोग किया गया है–

"How salt with sweat the peasant's bread!" [4]

"कड़े पसीने की किसान की रूखी रोटी"[5]

लाइट ऑफ एशिया और उसका अनुवाद *बुद्धचरित* दोनों ही कृतियाँ रसमयता की दृष्टि से समृद्ध हैं। दोनों कृतियों (मूल और अनूदित) में सभी रस किसी न किसी वर्णन में अवश्य आए हैं। फिर भी, सबसे प्रमुख रस जिनका उपयोग किया गया है– करुण, शृंगार और शांत ही हैं।

बुद्धचरित का आरंभ करुण रस से होता है। संसार के घोर दुख से द्रवित बुद्ध का जन्म होता है। क्रमशः हंस, वृद्ध, रोगी, मृतक के दुख को देखकर सिद्धार्थ में महाकरुणा का विकास होता है। संसार के दुख का सिद्धार्थ ने केवल अनुभव नहीं किया, बल्कि जिया भी। यशोधरा *बुद्धचरित* में शृंगार रस के आलंबन के रूप में आती है। यशोधरा का आगमन नए उल्लास का आगमन है, लेकिन सिद्धार्थ के भीतर की महाकरुणा उनके हृदय में प्रज्ज्वलित ही रहती है, सुप्त नहीं होती। इस प्रकार *बुद्धचरित* में करुण एवं शृंगार दोनों रसों का समानांतर रूप से पालन किया गया है।

---

1 *Light of Asia,* p.147
2 *बुद्धचरित,* पृ.193
3 वही, पृ.96
4 *Light of Asia,* p.14
5 *बुद्धचरित,* पृ.13

सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के साथ यशोधरा के जीवन में दुख की महानिशा छा जाती है, जिसका पर्यावसान बुद्ध के कपिलवस्तु आगमन के पश्चात् शांत रस अर्थात् निर्वेद तत्त्व में होता है।

लाइट ऑफ एशिया में आए रसपरिपाक वर्णनों को आचार्य शुक्ल ने कहीं-कहीं सांस्कृतिक कारणों से किंचित् परिवर्तित किया है। इनका उल्लेख पूर्व के विवेचनों में किया जा चुका है।

छंदमयता में *बुद्धचरित* अपने मूल से अधिक शास्त्रीय है। *लाइट ऑफ एशिया* छंदबद्ध तो है, किंतु अतुकांत, जबकि *बुद्धचरित* छंदबद्ध एवं तुकांत दोनों है। *लाइट ऑफ एशिया* में 'आयम्बिक पेंटामीटर' छंद प्रमुखतः अपनाया गया है, किंतु अतुकांत होने की वजह से यह 'ब्लैंक वर्स' में परिणत हो जाता है। ब्रजभाषा का सवैया छंद 'आयम्बिक पेंटामीटर' से मिलता-जुलता है। आचार्य शुक्ल ने इसका *बुद्धचरित* में मुख्य रूप से उपयोग किया है। कवित्त आचार्य शुक्ल द्वारा अपनाया गया दूसरा मुख्य छंद है। "ब्रजभाषा कवियों ने कवित्त और सवैया छंदों को जिस उत्कर्ष पर पहुँचाया है, शुक्ल जी के छंद उनसे पीछे नहीं है।"[1]

अंग्रेजी के महाकाव्यों की विशेषता के अनुरूप *लाइट ऑफ एशिया* में प्रत्येक सर्ग में छंद नहीं बदले गए हैं, जबकि हिंदी महाकाव्यों की विशेषता के अनुरूप *बुद्धचरित* के प्रत्येक सर्ग में छंद कई बार बदले गए हैं। *बुद्धचरित* में छंदों में वांछित परिवर्तन वर्णित भावों का अनुगामी है; अर्थात् भावों के बदलाव के साथ छंदों में परिवर्तन किया गया है।

अलंकारों के प्रयोग के आधार पर *लाइट ऑफ एशिया* और *बुद्धचरित* दोनों ही कृतियाँ अत्यंत परिपक्व हैं। इन दोनों कृतियों में अलंकार योजना की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि किसी भी वर्णन में कोई भी अलंकार जबरदस्ती लादा गया या ठूँसा हुआ नहीं लगता, बल्कि प्रत्येक अलंकार अपने वर्णन में इस प्रकार समा गया है कि वह अपने कथन का ही सहज स्वाभाविक अंग बन गया है। अगर पाठक सतर्क रूप से अलंकारों की खोज न करे तो वह प्रयुक्त अलंकारों को वर्णन के सहज स्वाभाविक प्रवाह का एक अंग समझेगा। *लाइट ऑफ एशिया* के इस गुण को आचार्य शुक्ल इतनी सफलता से इसलिए आत्मसात कर सके, क्योंकि अपने खुद के विचारों में भी वे शब्दों

---

[1] *अनुवाद* पत्रिका, अंक 96–97, जुलाई–दिसंबर 1998, पृ.38

से चमत्कार उत्पन्न करने की बजाय अर्थ एवं भावों के गांभीर्य को अत्यंत वरीयता देते थे। शब्द-क्रीड़ा एवं उक्ति-वैचित्र्य को ही कविता माननेवाले कवियों एवं आचार्यों की उन्होंने तीखी आलोचना की है।[1]

अर्नाल्ड ने *लाइट ऑफ एशिया* में मुख्य रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक, श्लेष, मानवीकरण, विरोधाभाष आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। *बुद्धचरित* में शुक्ल जी ने इन अलंकारों को लगभग यथानुरूप अनूदित करने में सफलता प्राप्त की है। अर्नाल्ड द्वारा उपयोग में लाए गए लगभग सभी अलंकार ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप ही हैं। यही कारण है कि शुक्ल जी द्वारा किए गए इनके अनुवादों में सर्वत्र सहजता एवं काव्यमयता विद्यमान है–

"Her eys, those lamps of love, – which were as if
Sunlight should shine from out the deepest dark,
Illumining Night's peace with Daytime's glow–"[2] (Simile)

"स्नेहदीप सरिस नवल जिन नैनन की
कालिमा सौं फूटती रही है द्युति अभिराम–
शर्वरी के शांतिपट बीच ह्वै जगती मनो
दिवस की ज्योति कमनीय याही सुखधाम–"[3] (उपमा, उत्प्रेक्षा)

Only its pains abide; its pleasures are
As birds which light and fly."[4] (Metaphor)

"क्लेश ही रहि जात है, सुख परत नाहिं जनाय,

---

[1] दृष्टव्य – *हिंदी साहित्य का इतिहास* में आचार्य शुक्ल द्वारा की गई केशवदास की आलोचना तथा *चिन्तामणि* (पहला भाग) में संकलित आचार्य शुक्ल का लेख 'कविता क्या है?'

[2] *Light of Asia*, p.117

[3] *बुद्धचरित*, पृ.113

[4] *Light of Asia*, p.147

आय पंछी से कबहुँ उड़ि जात झलक दिखाय।"[1] (रूपक)

".....poured forth

Through fleeting folds of Night's black drapery." [2] (Personification)

"सो जात सरकत यामिनीपट बीच कारे ढरि रही,

भगवान की या विजय की मृदु घोषणा सी कर रही।"[3] (मानवीकरण)

इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने *लाइट ऑफ एशिया* में आए अलंकारों को न केवल सफलतापूर्वक अनूदित किया है, अपितु कुछ स्थलों पर एक अलंकार के अनुवाद में एक से अधिक अलंकारों की सर्जना भी की है।

लेकिन हर अलंकार सहज रूप से अनूदित हो जानेवाले हों, ऐसा नहीं है। *लाइट ऑफ एशिया* में ऐसे कई अलंकारों का उपयोग है, जिन्हें ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप नहीं ढाला जा सकता। ऐसे अलंकारों को अर्थ की व्यंजना के स्तर पर खोलकर शुक्ल जी ने अनूदित किया। इस कठिनाई की चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल ने *बुद्धचरित* के वक्तव्य में लिखा– "अँगरेजी अलंकार जो हिंदी में आने वाले नहीं थे वे खोल दिए गए हैं, जैसे मूल में यह वाक्य था–

..... where the teacher spake

wisdom and power,

इसमें Hendiadys नामक अलंकार था जिसमें किसी संज्ञा का गुणवाचक शब्द उसके आगे एक संयोजक शब्द डालकर संज्ञा बनाकर रख दिया जाता है– जैसे, ज्ञान और ओज = ओजपूर्ण ज्ञान। उक्त वाक्य हिंदी में इस प्रकार किया गया है– "ओजपूर्ण अपूर्व भाख्यो ज्ञान श्री भगवान्।" तात्पर्य यह कि मूल के भावों का भी पूरा ध्यान रखा

---

1 *बुद्धचरित*, पृ.145

2 *Light of Asia*, p.112

3 *बुद्धचरित*, पृ.108

गया है।"[1] इस प्रकार के अलंकार *लाइट ऑफ एशिया* में मुख्यतः शब्द प्रयोगों को लेकर हैं–

".....If one drooped

In the lovely court– her dark glance dim, her feet

Faint in the dance – the guiltless criminal

Passed forth an exile from that paradise,"[2]

इसमें 'Oxy moron' अलंकार है। इसमें आए शब्द प्रयोग 'Guiltless Criminal' (पश्चातापहीन अपराधी) की अर्थवत्ता अनूदित अंश में नहीं आ पायी है, फिर भी भावों के संप्रेषण में शुक्ल जी सफल हैं–

"यदि कोऊ वा रस समाज में होय खिन्न मन,

परै नृत्य में मंद चरण वा धीमी चितवन

तुरतहि सो वा स्वर्गधाम सों जाय निकारी,

जासों दुख लखि तासु न होवे कुँवर दुखारी।"[3]

तात्पर्य यह कि *लाइट ऑफ एशिया* में आए अलंकारों को ब्रजभाषा के पद लालित्य में या तो शुक्ल जी ने सहज रूप से अनूदित कर दिया है, या फिर जिन अलंकारों का अनुवाद संभव नहीं था उन्हें अर्थ एवं भाव की रक्षा करते हुए पुनर्सृजित अवश्य कर दिया है।

निश्चित रूप से आचार्य शुक्ल ने न केवल मूल कृति के अर्थ, भाव एवं आस्वादन प्रक्रिया का ही सफलतापूर्वक रूपांतरण किया है, बल्कि उन्होंने अभिव्यंजना के विविध स्तरों को भी प्रभावी रूप से रूपांतरित कर लिया है। यद्यपि अनुवादकों के समक्ष बंधन होता है और इस बंधन की वजह से काव्यानुवाद दुर्लंघ्य सिद्ध होने लगता है, तथापि अनुवादक की सीमाओं से आबद्ध शुक्ल जी ने अपनी अनूदित कृति *बुद्धचरित* को जिस काव्यात्मक उत्कर्ष पर पहुँचाया है, वह प्रशंसनीय है। *बुद्धचरित* अपनी मूल

---

[1] वही, वक्तव्य, पृ.1

[2] *Light of Asia*, p.31

[3] *बुद्धचरित*, पृ.31

कृति *लाइट ऑफ एशिया* से न केवल होड़ लगाती है, बल्कि कुछ कमियों के बावजूद बहुधा श्रेष्ठ भी सिद्ध होती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष

आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने युग के प्रमुख अनुवादक थे। उन्होंने अनुवाद कर्म के माध्यम से अपने समकालीन हिंदी समाज एवं साहित्य को चिंतनधारा के नवीन आयामों से जोड़ा।

सर एडविन अर्नाल्ड की प्रसिद्ध काव्यकृति *लाइट ऑफ एशिया* के आचार्य शुक्ल द्वारा *बुद्धचरित* शीर्षक से किए गए काव्यानुवाद का ऐतिहासिक महत्त्व है। *बुद्धचरित* का प्रकाशन नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा 1922 ई. में किया गया। शुक्ल जी के संदर्भ में यह कृति विशेष महत्त्व की है, क्योंकि यह न केवल उनके द्वारा अनूदित एकमात्र काव्यकृति है, बल्कि उनके द्वारा ब्रजभाषा में किया गया अकेला अनुवाद भी है।

यह काव्यानुवाद एक साथ कई आवश्यकताओं की पूर्ति करता है– (i) इस अनुवाद ने बुद्ध से संबंधित उन नई चर्चाओं को जनता की अभिरुचि से जोड़ा, जिनकी शुरुआत उन दिनों बुद्ध से संबंधित पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थलों की खुदाई से हुई थी। (ii) एक वैश्विक धर्म के रूप में स्थापित बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध के जीवन और कर्म क्षेत्र के रूप में भारत देश का यह काव्यकृति महिमा मंडन करती है। (iii) यह कृति हिंदू समाज में विद्यमान जाति व्यवस्था जैसी बुराइयों का प्रतिरोध करती है। यह बात उन दिनों के राष्ट्रीय एकीकरण के वृहद् प्रयासों को सुदृढ़ बनाने के लिए बेहद जरूरी थी। (iv) यह कृति भूले हुए गौरव को याद कराने का प्रयास थी, क्योंकि– 'जिन बातों से हमारा गौरव था उन्हें भूलते-भूलते आज हमारी यह दशा हुई।'

आचार्य शुक्ल की यह इच्छा थी कि जिस भाषा में राम-कृष्ण का चरितगान भारत की जनता करती आ रही है उसी भाषा में भारत की महान् विभूति और गौरव स्तंभ भगवान बुद्ध का भी स्मरण होना चाहिए। इसीलिए *बुद्धचरित* की भाषा के रूप में शुक्ल जी ने लोककंठ में व्याप्त ब्रजभाषा को चुना। ब्रजभाषा के चुनाव का दूसरा कारण यह था कि यह भाषा अपने संस्कृत रूप में लंबे समय तक सारे उत्तरापथ की काव्य भाषा थी। यह महत्त्व ब्रजभाषा को ही प्राप्त है कि सर्वप्रथम यही भाषा जनभाषा के रूप में काव्यभाषा बनी।

अनूदित कृतियों को प्रायः सांस्कृतिक सेतु के रूप में स्वीकृत किया जाता है। *लाइट ऑफ एशिया* और उसके हिंदी अनुवाद *बुद्धचरित* की स्थिति इस मामले में

अत्यंत विशिष्ट है। इस प्रकरण में सांस्कृतिक सेतु का कार्य मूल कृति ही कर रही है, अनूदित कृति नहीं। अर्नाल्ड के पाठकों की संस्कृति अर्नाल्ड के काव्य नायक की संस्कृति से बिल्कुल अलग थी। यह अर्नाल्ड की मूल समस्या थी। इसीलिए *लाइट ऑफ एशिया* में एक ओर अर्नाल्ड का ध्यान अपने चरितनायक भगवान बुद्ध से संबद्ध देश-काल को विश्वस्त बनाने में लगा रहा तो दूसरी ओर वे इस दिशा में भी प्रयत्नशील रहे कि उनके पाठकों को सांस्कृतिक पार्थक्य के कारण कृति में वर्णित प्रसंगों से संगति बिठाने में कम से कम परेशानियाँ हों और वे आसानी से उन विचारों को आत्मसात कर सकें जिनका कवि संप्रेषण करना चाहता है।

लाइट ऑफ एशिया के हिंदी अनुवादक रामचंद्र शुक्ल के सामने इस प्रकार की समस्या नहीं थी। उनके पाठक चरित नायक की संस्कृति के ऐतिहासिक विकास के क्रम में थे और भारतीय परिवेश उनका अपना परिवेश था। शुक्ल जी स्वयं इस परिवेश में रचे-बसे थे। साथ ही, वे भारतीय संस्कृति के विशिष्ट व्याख्याता भी थे। यही कारण है कि *लाइट ऑफ एशिया* में जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृति अपनी अद्वितीय विशिष्टताओं के साथ आती है, अनुवाद मूल से आगे निकलते हुए अधिक यथार्थ और मर्मस्पर्शी हो जाता है। भारतीय परिवेश का निर्माण करने में अर्नाल्ड द्वारा किए गए अतिरिक्त प्रयासों के कारण ऐसे वर्णन न केवल बहुधा कृत्रिम या आरोपित लगने लगते हैं, बल्कि उनमें असंगतियाँ भी समाविष्ट हो गयी हैं। शुक्ल जी द्वारा अनूदित कृति में ऐसे वर्णनों में सहजता तो है ही, साथ ही उन्होंने मूल कृति की सांस्कृतिक एवं परिवेशगत असंगतियों को भी परिमार्जित किया है।

भारतीय लोक जीवन की अभिव्यक्ति की दिशा में अर्नाल्ड का प्रयास अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने मेलों, उत्सवों, राज-दरबार, प्राकृतिक सौंदर्य, स्त्री-पुरुष तथा राजा-प्रजा के संबंध, घरेलू स्थितियों, समारोह आदि का व्यंजनात्मक एवं प्रभावी वर्णन किया है। फिर भी किसी व्यक्ति द्वारा अपनी सांस्कृतिक और भौगोलिक सीमा से बहुत दूर किसी दूसरे देश के लोक-जीवन को समझना और उसे सटीक ढंग से प्रस्तुत कर पाना कठिन कार्य है। इस उपक्रम में निश्चय ही अर्नाल्ड से गलतियाँ हुई हैं। अनुवाद के दौरान आचार्य शुक्ल की सतर्क एवं पारखी दृष्टि इन त्रुटियों पर सतत बनी रही और उन्होंने इन सबका यथासंभव निदान एवं परिष्कार किया है।

लाइट ऑफ एशिया में बुद्ध के जीवन के साथ-साथ उनके विचारों एवं दार्शनिक निष्पत्तियों का भी समावेश है। आचार्य शुक्ल ने अर्नाल्ड द्वारा प्रस्तुत बौद्ध दर्शन को

लगभग अपरिवर्तनीय ही रखा है। अर्नाल्ड ने महायानियों द्वारा प्रस्तुत 'बोधिसत्व' की अवधारणा, महाकरुणा, प्रेम, जगत की चिंता और उसके कल्याण की भावना, अवतारवाद, बुद्ध की ईश्वर के रूप में स्वीकारोक्ति आदि विचारों को ग्रहण किया है और हीनयानियों द्वारा प्रस्तुत 'अर्हत्' की अवधारणा से पर्याप्त दूरी रखी है। 'क्षणभंगवाद' और 'कर्मवाद' के माध्यम से हीनयान के विचारों को भी *लाइट ऑफ एशिया* में थोड़ा ही, किंतु ग्रहण किया गया है। *बुद्धचरित* में शुक्ल जी ने इस परिप्रेक्ष्य में अर्नाल्ड का ही सामान्यतः अनुसरण किया है। अनुवाद में कतिपय परिवर्तन एवं संशोधन उन स्थलों पर अवश्य हुए हैं, जहाँ अर्नाल्ड से दार्शनिक विवेचन से संबंधित त्रुटियाँ हो गई हैं। लेकिन *बुद्धचरित* में भी दार्शनिक विवेचन से संबंधित त्रुटियाँ विद्यमान हैं और कुछेक जगह तो अनुवादक एक गलती सुधारते-सुधारते दूसरी गलती कर बैठे हैं। यथा– 'प्रतीत्यसमुत्पाद' (कारण-कार्य चक्र) की विवेचना मूल एवं अनूदित दोनों ही कृतियों में त्रुटिपूर्ण है।

बुद्धचरित अपनी मूल कृति *लाइट ऑफ एशिया* का शब्दशः या आँख मूँदकर कर लिया गया अनुवाद नहीं है। शुक्ल जी की आलोचक दृष्टि ने सतर्क चयन के साथ अनुवाद कार्य किया है। जो कुछ सही और अच्छा लगा, उसे उन्होंने अनूदित किया, जो कुछ खटका, उसे संशोधित किया और जो कुछ कथाक्रम में अनावश्यक प्रतीत हुआ, उसे छोड़ देने में भी उन्होंने कोई कोताही नहीं दिखाई। तात्पर्य यह कि शुक्ल जी ने प्रदत्त पाठ के मूल भावों को संरक्षित रखते हुए भी पर्याप्त स्वतंत्रता ली है। इस बात को अनूदित कृति के नामकरण के माध्यम से बखूबी परखा जा सकता है।

आचार्य शुक्ल ने मूल कृति के शीर्षक के सामान्य अनुवाद 'एशिया ज्योति' को ग्रहण न करते हुए अपनी अनूदित कृति का नामकरण *बुद्धचरित* किया है। यह शीर्षक अनूदित कृति को रामचरित और कृष्णचरित की परंपरा से जोड़ता है एवं बुद्ध के संबंध में शुक्ल जी की आत्मीयता को भी प्रकाशित करता है। साथ ही, यह शीर्षक मूल कृति के संपूर्ण शीर्षक को भी आत्मसात कर लेता है, जिसके अंतर्गत बुद्ध का जीवन और उनकी शिक्षाएँ हैं। इस प्रकार आचार्य शुक्ल द्वारा ली गई स्वतंत्रताओं में रचनात्मकता तथा संपूर्णता का विलक्षण संयोग दृष्टिगोचर होता है।

बुद्धचरित में शुक्ल जी ने *लाइट ऑफ एशिया* की मूल कथा में कोई परिवर्तन नहीं किया है। मूल कृति की भाँति *बुद्धचरित* में भी आठ सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में ठीक उतनी ही कथा वर्णित है जितनी की मूल काव्यकृति में। थोड़ी सी छूट लेते हुए

शुक्ल जी ने आठवें सर्ग में बुद्ध के कुशीनगर प्रस्थान, चुंद नामक कर्मकार के यहाँ अस्वस्थ हो जाने और परिनिर्वाण प्राप्त करने तक का वर्णन जोड़ा है, जो मूल काव्यकृति में अनुपस्थित है। साथ ही, शुक्ल जी ने कुछ पात्रों और स्थलों के नाम भी भारतीय संदर्भों में प्रचलन के अनुसार बदले हैं।

अर्नाल्ड ने पारिभाषिक शब्दों को कथाक्रम में ही समझाया है, किंतु शुक्ल जी को इतने से ही संतुष्टि नहीं हुई। उन्होंने कई जगह पाद टिप्पणी लिखकर पारिभाषिक शब्दों की तथ्यपूर्ण व्याख्याएँ दी हैं। साथ ही, बौद्ध दर्शन को पूरी तरह से स्पष्ट करने के लिए शुक्ल जी ने *बुद्धचरित* के अष्टम सर्ग में एक परिच्छेद अपनी ओर से जोड़ दिया है।

शिल्प के स्तर पर *बुद्धचरित* में एक परिवर्तन आचार्य शुक्ल ने यह किया है कि प्रत्येक सर्ग को बुद्ध के जीवन के विकास के विविध चरणों के रूप में उपसर्गों में विभाजित किया है, जबकि मूल कृति में सर्ग उपसर्गों के आधार पर विभाजित नहीं हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि यह विभाजन पाठक की सुविधा के दृष्टिकोण से है, अनुवादक की सुविधा के लिए नहीं।

शुक्ल जी ने अपने अनुवाद कार्य में सांस्कृतिक सहचरण को लक्ष्य भाषा (हिंदी) के पाठकों के विशिष्ट संदर्भ में देखा। उन्होंने इस बात का बराबर ध्यान रखा कि अनूदित कृति में मूल कृति के भावों की संरक्षा तो हो ही, उसका स्वरूप एवं संप्रेषण ऐसा हो कि पाठक अनूदित कृति के साथ सहज रूप से आत्मीय संबंध विकसित कर सकें।

अनुवाद के दौरान शुक्ल जी ने स्वाभाविक एवं सहज शैलीगत विशेषताओं का अनुसरण करते हुए भावानुवाद को वरीयता दी है। जहाँ कहीं भी स्रोत भाषा की निजी विशिष्टताओं के परिप्रेक्ष्य में निष्प्रभावी समतुल्यों से उनका सामना हुआ, उन्होंने नवीन उद्‌भावनाओं का प्रभाव साम्य के आधार पर पुनर्सृजन किया है।

बुद्धचरित की भाषा यद्यपि ब्रजभाषा है, तथापि इसका संबंध एक खास विस्तृत क्षेत्र अर्थात् उत्तरापथ की साझी संस्कृति और उसकी अर्थवत्ता से है। इसमें ब्रजमंडल के भीतर बोले जानेवाले सब शब्द ग्रहण नहीं किये गये हैं, बल्कि वे ही शब्द लिये गये हैं जो बहुत दूर तक बोले जाते हैं और थोड़े बहुत सब स्थानों में समझ लिए जाते हैं। काव्यभाषा के सामान्यत्व को ध्यान में रखते हुए आचार्य शुक्ल ने *बुद्धचरित* में ब्रजभाषा

के प्रचलित शब्दों का तो प्रयोग किया ही, साथ ही अवधी, बुंदेली, खड़ी बोली आदि के अत्यंत प्रचलित शब्दों को भी उन्होंने ग्रहण किया है।

आचार्य शुक्ल जनभाषा एवं काव्यभाषा के एकत्व के पक्षधर थे। *बुद्धचरित* में कृत्रिम, गढ़े हुए और समाज में अप्रचलित शब्दों का प्रयोग उन्होंने नहीं किया। भाषा की गरिमा का ध्यान रखते हुए शुक्ल जी ने ब्रजभाषा के संस्कृत रूप का ही उपयोग किया है, मुहल्ले-टोले में प्रचलित असंगत भाषा का नहीं। इसीलिए *बुद्धचरित* की भाषा न केवल जीवंत एवं प्रवाहमयी है, बल्कि उसमें गरिमा और औदात्य का भी प्रस्फुटन होता है। अनूदित कृति के रूप में *बुद्धचरित* की भाषा वर्णन एवं व्यंजना, दोनों का सक्षम रूप से निर्वाह करती है।

प्रबंध काव्य के रूप में *बुद्धचरित* को अनूदित करते हुए आचार्य शुक्ल ने तीन तत्त्वों– (i) संबंध निर्वाह (ii) कथा के गंभीर और मार्मिक स्थलों की पहचान तथा (iii) दृश्यों की स्थानगत विशेषता का विशेष रूप से ध्यान रखा है।

बुद्धचरित में संबंध निर्वाह प्रशंसनीय है। प्रत्येक सर्ग में कहीं भी कथा का प्रवाह टूटता दिखाई नहीं पड़ता। पात्रों के नाम एवं उनसे संबंधित स्थितियाँ कथाक्रम में ही सहज रूप से समाविष्ट हो गई हैं और उनके लिए अलग से सूचित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी है। कथा के गंभीर और मार्मिक स्थलों की पहचान के प्रति आचार्य शुक्ल सतर्क हैं। किन स्थलों पर पाठकों के रसास्वादन के लिए विराम लेना है और किन परिस्थितियों में सहज गति से गुजर जाना है, इस बात का ध्यान उन्होंने बराबर रखा है।

दृश्यों की स्थानगत विशेषता के आधार पर *बुद्धचरित* मूल कृति से श्रेष्ठ सिद्ध होती है। अर्नाल्ड के लिए इस परिप्रेक्ष्य में समस्या सांस्कृतिक सहचरण की तो है ही प्रामाणिक अनुभूति का अभाव उनके लिए और भी बड़ी समस्या बन जाती है। इसे अनुभव का अभाव ही कहा जाएगा कि उन्होंने बसंत ऋतु में किसानों द्वारा योकों को हल में नाँधकर खेत जुतवा दिया है।

प्राकृतिक दृश्यों एवं देशगत विशेषताओं का रंग *बुद्धचरित* में *लाइट ऑफ एशिया* से इतर बहुधा मौलिक है, साथ ही उनकी भारतीयता तो असंदिग्ध है ही। अपनी सांस्कृतिक परंपरा, उसके इतिहास और भारतीय परिवेश के गहन बोध के कारण शुक्ल जी की अभिव्यक्ति में बौद्धिक किंतु सहृदयोचित परिपक्वता है।

आचार्य शुक्ल अपने आलोचना कर्म में मर्यादावादी कहे जाते हैं। *बुद्धचरित* में अपने इस दृष्टिकोण को उन्होंने खुद के लिए भी अमली जामा पहनाया। भारतीय संदर्भ में इस प्रकार की दृष्टि और उसके अनुसार प्रदत्त पाठ में परिवर्तन कुछ स्थलों पर तो सफल रहता है, लेकिन कुछ प्रसंगों में अपनी मर्यादावादी दृष्टि को दृढ़ता से पकड़े रहने की बड़ी कीमत शुक्ल जी ने इन प्रसंगों में काव्यात्मक उत्कर्ष के क्षय के रूप में चुकाई है।

लाइट ऑफ एशिया मनोहारी प्रकृति चित्रों से परिपूर्ण रचना है। *बुद्धचरित* में अनुवाद के दौरान शुक्ल जी का मन यदि सबसे अधिक कहीं रमा है तो वह प्रकृति वर्णन में ही। इसीलिए प्रकृति वर्णनों के दौरान *बुद्धचरित* अपने संपूर्ण औदात्य एवं काव्यात्मक उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। प्रकृति की सूक्ष्मतम क्रियाओं को पूर्ण तन्मयता और सतर्कता के साथ शुक्ल जी ने विविध बिंब-विधानों में इस प्रकार संश्लिष्ट रूप से पिरोया है कि उनसे अर्थ की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि सीधे अनुभूति का संप्रेषण होने लगता है। कहीं-कहीं तो यह स्थिति भी हो जाती है कि अनुवाद मूल को प्रकृति वर्णन और बिंब-विधान के क्षेत्र में बहुत पीछे छोड़ देता है।

अर्नाल्ड ने व्यापक रूप से प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग अपनी रचना में किया है। आचार्य शुक्ल ने इन सबका अनुवाद सहजता से कर लिया है। अलंकारों के संबंध में स्थिति थोड़ी जटिल है। अर्नाल्ड द्वारा प्रयुक्त अंग्रेजी भाषा के प्रत्येक अलंकार (यथा– Hendiadys, oxy moron आदि) का ब्रजभाषा में रूपांतर संभव नहीं था। ऐसे अलंकारों को शुक्ल जी ने खोलकर भाव साम्य के आधार पर अनूदित किया। *बुद्धचरित* अलंकारों के प्रयोग के आधार पर अत्यंत परिपक्व है। दोनों ही कृतियों (मूल और अनुवाद) में अलंकार योजना की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि किसी भी वर्णन में कोई भी अलंकार जबर्दस्ती लादा गया या ठूँसा हुआ नहीं लगता, बल्कि प्रत्येक अलंकार अपने वर्णन में इस प्रकार समा गया है कि वह अपने कथन का ही सहज स्वाभाविक अंग बन गया है।

रस की दृष्टि से यद्यपि दोनों ही कृतियों में सभी रस किसी न किसी वर्णन में अवश्य आए हैं, तथापि सबसे प्रमुख रस जिनका विनियोग किया गया है– करुण, शृंगार और शांत हैं। *बुद्धचरित* का आरंभ करुण रस से होता है। यशोधरा का सिद्धार्थ के जीवन में आगमन नए उल्लास का आगमन है। वह शृंगार रस के आलंबन के रूप

में आती है। सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के साथ यशोधरा के जीवन में दुख की महानिशा छा जाती है। अंत में सभी रस शांत रस अर्थात् निर्वेद में निमग्न हो जाते हैं।

छंदमयता में *बुद्धचरित* अपने मूल से अधिक शास्त्रीय है। *लाइट ऑफ एशिया* छंदबद्ध तो है, किंतु अतुकांत, जबकि *बुद्धचरित* छंदबद्ध एवं तुकांत दोनों है। *लाइट ऑफ एशिया* में 'आयम्बिक पेंटामीटर' छंद मुख्यतः अपनाया गया है। ब्रजभाषा का सवैया छंद 'आयम्बिक पेंटामीटर' से मिलता-जुलता है। आचार्य शुक्ल ने *बुद्धचरित* में इसका मुख्य रूप से उपयोग किया है। कवित्त आचार्य शुक्ल द्वारा अपनाया गया दूसरा मुख्य छंद है।

अंग्रेजी के महाकाव्यों की विशेषता के अनुरूप *लाइट ऑफ एशिया* में प्रत्येक सर्ग में छंद नहीं बदले गए हैं, जबकि हिंदी महाकाव्यों की विशेषता के अनुरूप *बुद्धचरित* में छंदों का बदलाव भावों का अनुगामी है; अर्थात् भावों में परिवर्तन के साथ छंदों में बदलाव किया गया है।

आचार्य शुक्ल ने न केवल मूल कृति के अर्थ, भाव एवं आस्वादन प्रक्रिया का ही सफलतापूर्वक रूपांतरण किया है, बल्कि उन्होंने अभिव्यंजना के विविध स्तरों को भी प्रभावी रूप से रूपांतरित कर लिया है। यद्यपि अनुवादकों के समक्ष बंधन होता है और इस बंधन की वजह से काव्यानुवाद दुर्लंघ्य सिद्ध होने लगता है, तथापि अनुवादक की सीमाओं से आबद्ध शुक्ल जी ने अपनी अनूदित कृति *बुद्धचरित* को जिस काव्यात्मक उत्कर्ष पर पहुँचाया, वह प्रशंसनीय है। *बुद्धचरित* अपनी मूल कृति *लाइट ऑफ एशिया* से न केवल होड़ लगाती है, बल्कि बहुधा श्रेष्ठ भी सिद्ध होती है। यह अनूदित कृति अनुवाद के निकष पर तो श्रेष्ठ सिद्ध होती ही है, युगीन आवश्यकताओं, समस्याओं, चिंताओं और विमर्शों को भी विशेष रूप से उद्घाटित करती है। इस प्रकार बुद्ध की चिंता युग की चिंता तथा बुद्ध का उद्घोष युग के उद्घोष के रूप में अनुगुंजित होता है।

ग्रंथ सूची

ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

शुक्ल, रामचंद्र — *बुद्धचरित*
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
प्रथम संस्करण, संवत् 2042 वि.

Arnold, Edwin — ***Light of Asia***
Kegan Paul, Trench,
Trubner & Co. Ltd., London, 1948

सहायक ग्रंथ

ग्रोवर, बी. एल./यशपाल — *आधुनिक भारत का इतिहास*
एस. चंद एण्ड कं. लि., नई दिल्ली
पंद्रहवाँ संस्करण, 2000

चंद्र, विपन/त्रिपाठी, अमलेश/
दे, बरुण — *स्वतंत्रता संग्राम*
नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
सोलहवीं आवृत्ति, 2003

चतुर्वेदी, कुसुम / सिंह, ओमप्रकाश (सं.) — *चिन्तामणि (भाग–4)*
आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य
शोध संस्थान, वाराणसी
प्रथम संस्करण, 2002

चतुर्वेदी, रामस्वरूप — *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
तेरहवाँ संवर्धित संस्करण, 2000

जैन, निर्मला / बाँठिया, कुसुम — *पाश्चात्य साहित्य चिंतन*
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
आवृत्ति, 1998

तिवारी, भोलानाथ — *अनुवाद विज्ञान*
शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 1972

तिवारी, रामचंद्र — *आचार्य रामचंद्र शुक्ल*
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 2005

तिवारी, रामचंद्र (सं.) — *रामचंद्र शुक्ल (संचयिता)*
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 2003

त्यागी, सुरेश चंद्र (सं.) — *रामचंद्र शुक्ल*
आशिर प्रकाशन, सहारनपुर
संस्करण, 1985

द्विवेदी, हजारी प्रसाद — *कबीर*
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, सातवीं आवृत्ति, 1999

नगेन्द्र (सं.) — *अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं अनुप्रयोग*
हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1993

पाण्डेय, मैनेजर — *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*
हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
प्रथम संस्करण, 1989

पाण्डेय, रामकृपाल — *हिंदी आलोचना के एवरेस्ट* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1989

पालीवाल, कृष्णदत्त — *आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन जगत* साहित्यनिधि, दिल्ली, संस्करण, 1984

वर्मा, वेद प्रकाश — *नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत* अलाईड पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण, 1994

शर्मा, चंद्रधर — *भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली द्वितीय संस्करण, 1995

शर्मा, रामविलास — *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1997

शर्मा, रामविलास — *भाषा और समाज* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चौथा संस्करण, 2000

शर्मा, रामशरण — *प्राचीन भारत* एन. सी. ई. आर. टी. प्रथम संस्करण, 1990

शर्मा, आर. पी. — *भारतीय दर्शन* भारती भवन, पटना पुनर्मुद्रित संस्करण, 2003

शुक्ल, रामचंद्र — *हिंदी साहित्य का इतिहास*
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
36वाँ संस्करण, संवत् 2056 वि.

शुक्ल, रामचंद्र — *चिन्तामणि (पहला भाग)*
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण, 1999

शुक्ल, रामचंद्र (अनु.) — *विश्व प्रपंच*
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
संवत् 2019 वि.

शुक्ल, रामचंद्र (अनु.) — *शशांक*
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
नवीन संस्करण, संवत् 2042 वि.

सहगल, नगीन चंद — *काव्यानुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ*
हिंदी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय
प्रथम संस्करण, 1991

सिन्हा, रमण प्रसाद — *अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन*
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण, 2002

सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद — *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
पुनर्मुद्रण, 2002

पत्रिकाएँ

अनुवाद (त्रैमासिक) : अंक– जनवरी–मार्च 1987, जुलाई–दिसंबर 1998, जनवरी–जून 2000

नागरीप्रचारिणी पत्रिका : अंक– सितंबर 1909, नवंबर 1909, फरवरी 1910, मार्च 1910, अगस्त 1910, अगस्त 1919

सम्मेलन पत्रिका : अंक– चैत्र–मार्गशीर्ष, शक 1906

सरस्वती : अंक– सितंबर 1902, दिसंबर 1902, जुलाई 1904, अगस्त 1922, सितंबर 1922, नवंबर 1922

शोध ग्रंथ

तिवारी, संजय कुमार : 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कर्म' लघु शोध प्रबंध भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, 1997

अन्य सहायक ग्रंथ

श्रीमद्भगवद्गीता गीता प्रेस, गोरखपुर, तेरहवाँ संस्करण, संवत् 2057

श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वितीय खंड) गीता प्रेस, गोरखपुर, अठारहवाँ संस्करण, संवत् 2049

'महावीर पंचांग' ठाकुर प्रसाद एण्ड संस, वाराणसी, संवत् 2061

Jawaharlal Nehru University Library